स्वामी रामतीर्थ के समग्र ग्रन्थ—भाग १

ॐ

स्वामी रामतीर्थ

के

लेख व उपदेश

प्रथम भाग

(संशोधित संस्करण)

अन्तरात्मा

प्रकाशक—

रामतीर्थ प्रतिष्ठान

(रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग)

लखनऊ

तृतीयावृत्ति] सन् १९५० [मूल्य १।।)

दो शब्द

राम की वाणी अमर है। अतः रामतीर्थ प्रतिष्ठान निरन्तर उनकी वाणी को जिज्ञासुओ के पास पहुँचाने में प्रयत्नशील रहता है। सबसे पहले सन् १९१९ में राम की वाणी रामतीर्थ ग्रन्थावली के नाम से २८ भागो में प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ। तदुपरान्त सन् १९२९ मे यही वाणी स्वामी रामतीर्थ के लेख व उपदेश के नाम से प्रकाशित होना प्रारम्भ हुई। अब सन् १९५० में इसका तृतीय संस्करण स्वामी राम के समग्र ग्रन्थ के नाम से १६ भागो में प्रारम्भ हुआ है। इसका पहला भाग पाठको के सामने है। प्रेस की असावधानी से इस भाग मे कुछ छोटा टाइप लगा दिया गया है। अब शेष भागों में पहले के समान ही बड़ा टाइप लगाया जायगा।

सम्प्रति हमारा सभी राम प्रेमियो से नम्र निवेदन है कि वे पहले ही के समान दूने उत्साह से राम की इस अमर वाणी के प्रचार में हमारा हाथ बटाये।

हरि ॐ

जन्माष्टमी
संवत् २००७

रामेश्वरसहायसिंह, मंत्री
रामतीर्थ प्रतिष्ठान

विषय-सूची

भूमिका

(अंग्रेज़ी जिल्द प्रथम की भूमिका के रूप मे दिया हुआ श्रीयुत पूर्णसिह जी का लेख।)

स्वामी राम के नाम और याद मे यह ग्रन्थावली जन-साधारण को भेंट की जाती है। इसमे उनके सब लेखो और व्याख्यानों को एकत्र करने का विचार है। उनके लेखों और व्याख्यानो का एक छोटा सा अंग्रेज़ी संग्रह उनके जीवन-काल मे ही मद्रास की श्री गणेश-कम्पनी ने प्रकाशित किया था। इनके सिवाय, अन्य हस्त-लेख, जिनमे अधिकाश कुछ अमेरिकन मित्रो की लिखी हुई स्वामी जी के अमेरिका के व्याख्यान पर टिप्पणिया (notes) थी, स्वामी जी के देह-त्याग पर उनके बक्स मे मिले थे। उनके जीवन मे प्रकाशित लेखो को छोड़ कर, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, और जो इस संग्रह मे भी सम्मिलित हैं, स्वामी जी के अन्य व्याख्यानो पर उनकी पुनरावृत्ति नही हो पाई। अतएव बहुत कुछ इनमें वह अंश है, जिसे वे शायद निकाल डालते, और बहुतेरी ऐसी बातो का अभाव है, जो शायद वे बढ़ा देते। इन हस्त-लेखो को बिलकुल नये साचे मे ढाल कर इनके विषयो के महत्त्व पूर्ण अंशों को वास्तव में नये सिरे से लिखने का और बहुत कुछ नवीन विचार, जो उनके मन में थे, उसे जोड कर अपने इन उपदेशो को क्रमबद्ध व्याख्या बना देने का उनका विचार था। ऐसा संशोधित और परिमार्जित ग्रन्थ अवश्य हो वेदान्त-दर्शन पर एक नवीन और अद्‌भुत ग्रन्थ होता, जिससे वेदान्त और भावी सन्तानो के व्यक्तिगत, तथा सामाजिक धर्म की उन्नति होती। किन्तु मुख्यतः दो कारणो से उनकी इच्छा अपूर्ण रह गई। एक तो, अपने प्रस्तावित

ग्रन्थ की तैयारी के लिये, देह त्यागने के प्राय: दो वर्ष पूर्व मूल वेदों का सर्वांगपूर्ण अध्ययन उन्होंने गम्भीरता और उत्सुकता पूर्वक प्रारम्भ किया था; और इस प्रकार जो समय अपने लेखों को व्यवस्थित करने में ख़र्च करके वे बड़ा उपकार कर सकते थे, वह अन्तिम कृति को महान् और स्मरणीय बनाने के प्रयत्न में लगा। दूसरे, जनता के संसर्ग से दूर, हिमालय के एकान्तवास से, जो उन्हें प्रिय था, अनन्त स्वरूप में उनकी लीनता नित्य प्रति बढ़ती गई, और क्रमश: ऊँची उड़ाने भरते हुए उनके मन के पैर उखड़ गये। (जनसमागम बना रहने पर सम्भव था कि, लोक की आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये उनकी बुद्धि उत्तेजित होती।) इन पंक्तियों का लेखक जब अन्तिम बार उनके साथ था, वे अधिकतर चुप रहते थे। लिखने और पढ़ने में उन्हें रुचि नहीं रह गई थी। प्रश्न करने पर वे अपनी ज्ञानावस्था अथवा अपनी परम मौनता, जिसे वे उस समय जीवन में मृत्यु (जीवन मुक्ति) के नाम से पुकारते थे, उसके रहस्य हमें समझाते थे। वे हम लोगों से कहते थे कि, "जितना ही अधिक कोई जीवन में मरता है, दूसरों के लाभ के लिये उतनी ही अधिक भलाई स्वभावत: और अनायास उससे निकलती है।" "हाथ में लिया हुआ काम मुझसे पूरा होता न जान पड़ता हो, परन्तु मैं जानता हूँ कि, मेरे चले जाने पर वह किसी समय अवश्य होगा और अधिक अच्छी रीति से होगा। जो विचार मेरे मन में भरे हुए हैं और मेरे जीवन के पथ-प्रदर्शक रहे हैं, वे धीरे धीरे करके, काल पाकर समाज में व्याप जायँगे, और तभी उनके (समाज के लोगों के) प्रारब्धों को ठीक फलीभूत कर सकेंगे, जब मैं इस समय सब मनसूबों, इच्छाओं और उद्देश्यों को त्याग कर परमात्मा में अपने को लीन कर दूँगा।"

यह विचार उनमें ऐसा बद्धमूल हो गया था कि लाख प्रार्थनायें भी उन्हे लिखने में न लगा सकीं।

इस प्रकार यद्यपि हम उनकी शिक्षाओं की उन्हीं की अपनी हस्त-लिखित नियमित व्याख्या से वंचित रहे, परन्तु यह संतोष की बात है कि उनके विचार की कुछ सामग्री हमें प्राप्त है, चाहे वह कितनी ही बिखरी हुई और टूटे फूटे अंशो में क्यो न हो। अतएव कुछ संकल्प-विकल्प के बाद निश्चय किया गया कि, उनके विचार की इस सामग्री और उनके अचिन्तित व्याख्यानो में प्रकट होने वाले उनके ज्ञान के प्रतिबिम्बों को, उनके निबन्धो और नोट-बुको (note-books) के सहित, प्रायः उसी रूप में जिसमें वे छोड गये हैं, छाप कर सर्वसाधारण के सामने रख दिया जाय। जो राम से मिले हैं, उनके बहुतेर और कदाचित् सब व्याख्यानो में उन्हें पहचान लेंगे और बोध करेंगे कि उनके विलक्षण ओजस्वी ढंग को मानो वे अब भी सुन रहे है। वे उनके व्यक्तित्व की मोहनी से एक बार फिर अपने को सम्मोहित समझेंगे, और इसके साथ साथ राम की प्रेम मयी और सम्मान पूर्वक संगति से जो सस्कार उनके चित्तों में घर कर गये हैं, उनके प्रभाव से वे उस कमी को भी पूरा कर देंगे, कि जो इस छपो लिपि में रह गई है। जिन्हे राम के दर्शन का अवसर नहीं मिला, वे यदि धीरज धर कर आदि से अन्त तक उनके इन कथनो को पढ जायँगे, तो उस परमानन्दमय ज्ञानावस्था का अनुभव कर लेंगे, कि जो इन कथनो की आधार है और इनको मनोहर तथा अर्थ पूर्ण बनाती है। किसी स्थल पर सम्भव है, वे उनके विचारो को न समझ सकें। परन्तु दूसरे स्थान पर उन्हीं विचारों को वे कहीं अधिक स्पष्टता और प्रबलता से प्रकट किया हुआ पावेंगे।

विभिन्न विचारों और मतों के लोगों को, इन पन्नों के पढ़ जाने पर अपनी बुद्धि और जीवात्मा के भोजन के लिये यथेष्ट सामग्री प्राप्त होगी, और निस्सन्देह बहुत कुछ को तो वे अपनी ही वस्तु समझेंगे।

इन ग्रन्थों में स्वामी राम हमारे सामने साहित्य-लेखक के रूप में नहीं प्रकट होते, और उनकी ज़रा सी भी इच्छा नहीं दीखती कि उन्हें ग्रन्थकार मान कर उनकी आलोचना की जाय। किन्तु वे हमारे सामने जीवन के आध्यात्मिक नियमों के उपदेशक की महिमा से युक्त होकर आते हैं। उनके भाषण का एक बड़ा भारी लक्षण यह है कि वे अपने हृदय की सच्ची बात हमसे कहते हैं और व्याख्यानबाज़ों की तरह वेदान्त के सिद्धान्तों को हमारेसामने सिद्ध करने की चेष्टा नहीं करते। यह बात नहीं कि, उनमें यह शक्ति नहीं थी। उनके जानने वाले जानते हैं कि वे अपने विषय के पूर्ण ज्ञाता थे, किन्तु कारण यह है कि वे केवल उन्हीं विचारों को हमारे सामने रखने की चेष्टा करते है, कि जिनको अपने जीवन काल में व्यवहार में वे ला चुके थे और जिनका अनुकरण, वे समझते थे, दूसरों को भी उसी तरह मनुष्य-जीवन के गौरव, आनन्द और सफलता के सर्वोच्च शिखर पर ले जायगा, जिस तरह उन्हें ले गया था। अतएव वे अपना बुद्धि-वैभव हमें नहीं दिखलाते, परन्तु अपने कुछ अनुभव हमें बतलाना चाहते हैं, और कई एक विचारों पर अमल करने से जीवन में प्राप्त होने वाले परिणामों की प्रेरणा से वे उत्साह के साथ साफ़ साफ़ बोलते हैं। इस प्रकार उनके ये व्याख्यान उस सत्य को जिसमें उन्हें विश्वास था अनुभव करने में केवल सहायक और संकेत मात्र हैं, न कि उस सत्य की दार्शनिक और ठोस युक्तियों से पूर्ण व्याख्यायें। बुद्धि-वैभव के भार से दबे हुए ग्रन्थों की अधिकता से क्या हम ऊब नहीं

उठे हैं ? वास्तव में जीवन के साधारण, सरल और स्पष्ट स्वरों में हम लोगों से एक विलक्षण पुरुष का बातचीत करते दिखाई देना बहुत ही सुखकर है। कोई दलील देने के बदले स्वामी राम इस विश्वास से हमे एक कहानी द्वारा उपदेश देते हैं कि मनुष्य के वास्तविक जीवन को दूसरे के जीवन से अधिक सहानुभूति होती है और मानसिक तर्क-वितर्क की अमूर्त रचना की अपेक्षा वह उसे अधिक प्रभावशाली बनाती है। उनके वर्णन मे कवियो का सा उल्लास और स्वतंत्रता है। वे यद्यपि तत्वज्ञानी कवि थे, तथापि उनके विचारो और वचनों की प्रतिपादन-शक्ति अनन्त को दर्शाने में अपूर्व थी। वे जीवन के उस गम्भीर संगीत के तत्त्वज्ञ हैं जो केवल उन्हीं को सुनाई देता है जो यथेष्ट गहराई तक जाते है।

राम स्वयं क्या थे और हमारे लिये क्या थे, इसकी धारणा कराने के लिये इस स्थान पर कुछ पंक्तियों का लिखना उपयुक्त होगा। पंजाब के एक निर्धन ब्राह्मण कुटुम्ब में जन्म लेकर बचपन से ही उन्होंने स्वयं धीरता से अपना निर्माण किया। पल-पल, क्षण-क्षण और दिन-दिन में उन्होंने धीरे-धीरे अपने को बनाया। यह कहा जा सकता है कि, उनके भावी जीवन का सम्पूर्ण चित्र शायद उनके हृदय-नेत्रों के सामने पहले ही से खिंचा हुआ था, क्योंकि बाल्यकाल में ही वे एक निश्चित उद्देश्य के लिये बडी गम्भीरता से और विचार पूर्वक चुप चाप तैयार हो रहे थे। गरीब ब्राह्मण-कुमार के निश्चयो में परिपक्व मन की दृढता थी। वह किसी भी परिस्थिति मे हिचकता नहीं था, और न किसी प्रकार की कठिनाई से भयभीत ही होता था। उस अत्यन्त नम्र और मनोहर आकृति के भीतर जिसमे प्रायः कोमल कुमारी की सी लज्जा और संकोच के संयोग की झलक थी, ब्राह्मण बालक के दुर्बल शरीर में वह दृढ निश्चय शक्ति छिपी हुई थी, कि

जो हिलना नहीं जानती थी। यह बालक एक आदर्श विद्यार्थी था। अध्ययन पर इसका अनुराग सासारिक सुखो की आशा से नहीं, परन्तु ज्ञान की नित्य बढ़ती हुई प्यास को बुझाने के लिये था, जो अनुराग दिन प्रति दिन इसके अन्तःकरण में नया जोश भरता रहता था। इनका नित्य का पढ़ना इस हवनकुण्ड की वेदी पर पवित्र आहुति थी।

रात को पढ़ने के हेतु दीपक के तेल के लिये वे कभी कभी वस्त्र नही बनवाते थे व किसी किसी दिन भोजन भी नही करते थे। स्वामी राम की छात्रावस्था में ऐसा प्राय: हुआ है कि वे शाम से सबेरे तक पढ़ने में लीन रहे। विद्या का प्रेम इतने ज़ोर से उनके हृदय को मसोसता था कि विद्यार्थी-जीवन के साधारण सुख और शारीरिक आवश्यकतायें बिलकुल भूल गई थीं। भूख और प्यास, सर्दी और गर्मी का उनकी इस अतिशय ज्ञानपिपासा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। गुजरानवाला और लाहौर में अभी ऐसे लोग मौजूद है जिन्होने उनकी छात्रावस्था देखी है। वे कहते है कि शुद्ध--चित्त गोस्वामी (तीर्थ राम) दिन-रात असहाय और अकेला परिश्रम करता था, अर्थात् बिना युद्ध के साधनो के जीवन से संग्राम करता था। और उन्हे वे अवसर याद हैं, जब दानशीलता का गर्व रखने वाले इस देश में भी बेचारे ब्राह्मण-बालक के पास कई दिनो तक बहुत थोड़ा या बिलकुल ही भोजन नही होता था, और इस पर भी उसके मुखमण्डल से अमित हर्ष और सन्तोष सदा टपकता रहता था।

अतएव स्वामी राम ने अपने तत्पश्चात् के जीवन में जिस ज्ञान को अपने उपदेशों द्वारा प्रकट किया है, वह घोरतम तपस्या और

कठिनतम परिश्रम से रत्ती रत्ती करके संचित किया हुआ था। और हमारे लिये तो वह अत्यन्त करुणा से परिपूर्ण है, क्योंकि हमें याद है कि यह पुष्प कैसे अत्यन्त दरिद्र और कटीले जीवन में कवि, तत्वज्ञानी, विद्वान् और गणितशास्त्री के रूप मे खिला।

लाहौर के सरकारी कालेज के प्रधानाध्यापक (Principal) ने जब प्रान्तीय सिविल सरविस (Provincial Civil Service) के लिये उनका नाम भेजने की इच्छा प्रकट की थी, तब राम ने सिर झुका कर और आँखो मे आँसू भर कर कहा था कि अपनी कमाई बेचने के लिये नही बल्कि बाँटने के लिये मैने इतना श्रम किया था। शासक कर्मचारी बनने की अपेक्षा अध्यापक होना उन्हे पसन्द हुआ।

विद्या में ऐसा लिप्त और प्रेमी विद्यार्थी बड़ा होकर शुद्ध और सत्यप्रिय मनुष्य स्वभावतः ही हो जाता है।

विद्यार्थी अवस्था मे भी राम की बुद्धि अपने इर्द-गिर्द की परिस्थितियो से पूर्णतया दूर रह कर पूर्ण एकान्त का सुख लूटती थी। वे अकेले रहते हुए पुस्तको द्वारा केवल महात्मा पुरुषो की संगति करते थे। अपने उच्च कार्यों में दिलोजान से लगे हुए वे न दाहिने देखते थे न बायें। अपने जीवन को उन्होने बचपन से ही अपने आदर्शों से एक ताल कर रखा था। उनकी विद्यार्थी-अवस्था जानने वाले उनके चरित्र की निर्मल स्वच्छता और जीवन के उच्च नैतिक लक्ष्य को सन्मान पूर्वक स्वीकार करते है। अपने विद्यार्थी जीवन मे स्वामी राम भीतर ही भीतर बढ़ रहे थे। वे अपने जीवन को बारम्बार पूर्णता के साँचो मे गला गला कर ढाल रहे थे। अपनी प्रतिमा को पूर्णतया सुन्दर बनाने के लिये वे उसकी बेडौल रेखाओ को दिन रात की

छेनी से गढ़ते रहे, नित्य प्रति वे अपने से अधिक अधिक सुघड़ होते जाते थे। जब वे गणित विद्या के अध्यापक नियत हुए, तो पहला निबन्ध उन्होंने यही लिखा था, "गणित का अध्ययन कैसे करना चाहिये" (How to study Mathematics)। उसमें वे यही उपदेश ते है कि पेट को चिकने और भारी पदार्थों से अधिक भर देने वाला तीव्र-बुद्धि विद्यार्थी भी अयोग्य और स्थूल-बुद्धि हो जाता है। इसके विपरीत हलके भोजन से मस्तिष्क सदा स्वच्छ और हलका रहता है। और यही विद्यार्थी-जीवन की सफलता का रहस्य है। उनका कहना है कि काम में उचित ध्यान लगने के लिये दूसरी ज़रूरी शर्त है मन की शुद्धता, और इस एक बात के बिना कोई भी उपाय विद्यार्थी के मन की वृत्ति को ठीक नही रख सकता।

इस तरह वे अपने विद्यार्थी-जीवन के अनुभवों को ऐसे सरल उपदेशो में भर देते हैं जैसे कि हमे उक्त निबन्ध में मिलते हैं। वे लिखने के लिये नही लिखते हैं, और न बोलने के लिये बोलते हैं। वे अपनी लेखनी तभी उठाते या मुख तभी खोलते हैं, जब उन्हें कुछ देना होता है। "मैं तथ्यों को बटोरने के लिये ख़ूब यत्न करता हूँ, और जब वे मेरे हो जाते हैं, तब मै ऊँचे पर खड़ा होकर सदा के लिये अपने सत्य के संदेश की घोषणा करता हूं" (I try hard for gatheing facts, but when they are mine; I stand on a rock proclaiming my message of truth for all times)। ऊपर लिखी सम्मतियो की चर्चा यहाँ केवल उनकी पहले सीखने और तब सिखाने की शैली बताने के लिये की गई है। वे अपने पर वस्तुओं और विचारों के प्रभावों का निरीक्षण करते थे, और तब अपने स्वतंत्र तथा निष्पक्ष विचार स्थिर करते थे,

और उन्हें सत्य या असत्य मान लेने के पूर्व अपने जीवन की कठिन कसौटी में वर्षों तक कसते थे और दूसरों के काम के लायक बनाने के पूर्व उन्हे पुष्ट करने में वे और भी अधिक समय लगाते थे। जैसा कि ऊपर कहा गया है, जो बातें वे दूसरों को सिखाना चाहते थे, उन्हे पूरी तरह बिना सीखे और बिना उनके पूर्ण परिडत हुए वे अपना मुख नहीं खोलते थे, और शिक्षक बनने का स्वांग नही रचते थे। उनके चरित्र की गुप्त कुञ्जियों में से एक यह है। क्या विद्यार्थी-जीवन में और क्या अध्यापक की दशा मे, स्वामी राम साहित्य और विज्ञान की अपेक्षा उच्चतर ज्ञान के लिये सदा गुप्त भाव से श्रम करते रहे और स्वामी बन कर संसार के सामने अपने सत्य की घोषणा करने के पूर्व वे ठीक डारविन (Darwin) की भाँति जीवन के उच्चतर नियमो पर अपने विचारो और विश्वासो का धीरता पूर्वक संगठन करते रहे। हम उन्हे सदा मानव जाति के प्रति अपने जीवन की बडी नैतिक ज़िम्मेदारी पूर्ण गम्भीर ज्ञान के साथ काम करते पाते हैं। वे जानते थे कि अपने जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के लिये अध्यापक का आसन छोड कर मुझे वह मञ्च ग्रहण करना पड़ेगा, जहाँ से समग्र मानव जाति तथा भावी सन्तति को उपदेश मिलेगा; और वे अपने मन मे अपने इस दायित्व (ज़िम्मेदारी) को सदा तौलते रहते थे। अतएव उन्हें आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये श्रम करने में और भी अधिक कष्ट उठाना तथा घोर युद्ध करना पडा। प्रेम और विश्वास के पंखो को लगा कर उन्होने धीरे धीरे और दृढता पूर्वक अपने जीवन को परमात्मा के वक्षस्थल पर उड़ाना शुरू किया, और वे नित्य प्रति ऊंचे उडते उडते अनन्त मे, ब्रह्म मे, परमात्मा मे, अथवा उन्हीं के अपने शब्दो के अनुसार आत्मदेव समा गये। उनकी आत्मा की अभिलाषाओं, आध्यात्मिक दिक्कतो; चित्तवृत्ति

सम्बन्धी कठिनाइयों और मानसिक क्लेशों का इतिहास हमारी आँखों से छिपा हुआ है। परन्तु उनके जीवन के इस भाग में परिश्रम से प्राप्त किये हुए अनुभवों की ही सम्पत्ति हमें उनके स्वामी-जीवन की शिक्षाओं में मिलती है। अनेक बार सारी रात वे रोते रहे और सबेरे केवल उनकी धर्म-पत्नी को उनके बिछौने की चादर आँसुओं से भीगी मिली। उन्हें क्या कष्ट था? किस लिये वे इतने दुःखी थे। कारण कुछ भी हो, उनके चित्त की उत्कट पारलौकिक आकाँक्षाओं के ये आँसू हैं कि जो उच्चतम प्रेम के लिये उनके विचारों को सींचते थे। नदियों के तटों पर, जङ्गलों के एकाँत अन्धकारों में, प्रकृति के बदलते हुए दृश्यों को देखने और आत्मा के चिन्तन में उन्होंने अनेक रातें बे सोये काटीं। इस दशा में कभी तो अपने सङ्गी से बिछुड़े हुए बिरही पक्षी के शोक-सन्तप्त स्वर में अपने रचे हुए गीत गाते थे और कभी कभी उत्कट ईश-भक्ति से मूर्छित हो जाते थे, और सचेत होने पर अपने नेत्रों के पवित्र गङ्गा-जल में स्नान करते थे। उनके प्रेम की अवस्थायें सदा अज्ञात रहेंगी, क्योंकि उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन को हमसे छिपा रखना पसन्द किया है, और उनके ज्ञान-विकास के ब्यौरे को उनके सिवाय और कोई नहीं जानता। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि स्वयं कवि और वदूत होने के पूर्व, वे साधुओं, महात्माओं तथा कवियों के प्रभापूर्ण समूह की सङ्गति में रहते थे। ईरान के सूफ़ियों, विशेषतः हाफ़िज़ अत्तार; मौलाना रूम, और शम्सतबरेज़ के वे निरन्तर साथी थे। सदियों के अपने धार्मिक उत्कर्ष के सहित भारत के महात्मागण उनकी आत्मा को ज्ञान देने वाले थे। तुलसीदास और सूरदास निस्सन्देह उनके प्रेरक थे। चैतन्य का उन्मत्त प्रेम, तुकाराम और नानक की मधुरता, कबीर और फ़रीद तथा हसन और बूअली कलन्दर की धारणायें, प्रह्लाद और ध्रुव के विश्वास, मीराबाई,

बुल्लाशाह और गोपालसिंह की अतिशय आध्यात्मिकता, कृष्ण की गूढ़ता, शिव और शंकर के ज्ञान इमर्सन (Emerson), कैंट (Kant), गेटे (Goethe), और कारलाइल (Carlyle), के विचार पूर्व के आलसी वेदान्त की तंद्रा दूर करने वाले पाश्चात्य वाल्ट ह्विटमैन (Walt Whitman) और थोरो (Thoreau) के स्वतन्त्र गीत, पूर्व और पश्चिम दोनो ही के धार्मिक सिद्धान्तो और अन्ध विश्वास मूलक तत्त्व-विद्याओं पर प्रभाव डालने वाले तथा मानव-हृदय को उदार बनाने वाले और मानव-मन को सदियों की मानसिक गुलामी से छुटाने वाले क्लिफ़ोर्ड, (Clifford), हक्सले (Huxley), टिंडल (Tyndal), मिल (Mill), डार्विन (Darwin) और स्पेंसर (Spencer) की वैज्ञानिक सत्यता और स्पष्टवादिता—इन सब तथा अन्य अनेक प्रभावों ने व्यक्तिगत रूप से एवं मिल कर उनके मन को आदर्शवादी बनाया था। अपने स्वामी जीवन में उन्हें हम सदा परमात्मा मे निवास करते पाते हैं; और लड़कपन के विनीत और लज्जाशील विद्यार्थी की छाया भी उनमें नही दिखाई पड़ती। अब उनका स्वर कहीं अधिक शक्तिशाली, चरित्र ओजस्वी, अनुभव हृदय-प्रेरक, और शरीर अति आकर्षक होगया था। उनकी उपस्थिति आस पास के वायु-मण्डल ही को मोह लेती थी। उनकी संगति में मनुष्य के मन की अवस्थाये सर्वतः सुन्दर दृश्य में घूमती रहती थी। उनकी सचाई का जादू कभी तो उपस्थित जन-समूह को रुला देता था, और कभी परम संतोष की मुसकिया पैदा करता था। साधारण से साधारण वस्तुओं को भी हमारी दृष्टि में ईश्वर के ऊंचे से ऊंचे अवतारो का रूप देने मे वे कवि की भाँति समर्थ थे। उनके स्पर्श से किसी मे कवि की तो किसी मे चित्रकार की, किसी मे उत्कट योगी की तो किसी मे शूरवीर की रुचिया पैदा

होती थीं। अनेक साधारण मन इस दर्जे का आवेश अनुभव करते थे कि उन्हे अपनी मानसिक शक्ति में वृद्धि प्रतीत होती थी।

उनके एक अमेरिकन मित्र ने उनके देह-त्याग पर लेखक को नीचे दिया पत्र लिखा था। इसमे उनका वर्णन ठीक वैसा ही हुआ है जैसा कि वे हम लोगो के लिये थे। और इस कारण से उसका यहा उद्धृत करना उचित होगा।

"भाषा के उदासीन व संकीर्ण शब्दो में जिस बात को प्रकट करना अति कठिन है, उसे व्यक्त करने की जब मै चेष्टा करता हूँ तो शब्द मेरा साथ नही देते।

"राम की भाषा मधुर निर्दोष बालक की, पक्षियो, पुष्पो, बहती नदी, पेड को हिलती हुई डालो, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों की भाषा थी। संसार और मनुष्यो के बाहरी दिखावे के तले उनकी भाषा बहती थी।

"समुद्रो और महाद्वीपों, खेतो और तृणो तथा वृक्षों की जड़ो के नीचे से गहरा बढ़ता हुआ उनका जीवन प्रकृति में जा मिलता था, नहीं, नही बल्कि प्रकृति ही का जीवन हो जाता था। उनकी भाषा मनुष्यों के क्षुद्र विचारो और स्वप्नो के भीतर तक प्रवेश करती थी। उस विलक्षण मधुर तान को सुनने वाले कान कितने थोड़े हैं। उन्होने उसे सुना, उस पर अमल किया, उसका दम भरा, उसकी शिक्षा दी, और उनकी समग्र आत्मा उसके गहरे रंग से रंगी हुई थी। वे ऐसे दैव-दूत वा पैगम्बर वा धर्म-प्रवर्तक (messenger) थे कि जिनके अन्दर आनन्द परिपूर्ण था।

ऐ मुक्त आत्मा! ऐ आत्मा, जिसका कि शरीर से नाता पूरा हो

चुका है !! ऐ उड़ती हुई, शब्दातीत सुखी, दूसरे लोकों में जाती हुई, और पुनः वास्तविक दशा को प्राप्त होती मुक्त आत्मा !!! तुझे बारम्बार प्रणाम है।

....

"वे इतने नम्र, सरल, बालक-सदृश, पुनीत और श्रेष्ठ, सच्चे, उत्साही और गर्व रहित थे कि, सत्य की चाह मे विकल मन वालो में से जिस किसी का उनसे संसर्ग हुआ, वह बिना अपार लाभ उठाये न रहा। प्रत्येक व्याख्यान या छात्र-उपदेश के बाद उनसे प्रश्न किये जाते थे, जिनके उत्तर सदा ही अति स्पष्ट, संक्षिप्त, मधुर और प्रेम पूर्वक दिये जाते थे। वे सदा आनन्द और शान्ति से भरे रहते थे और जब वे वार्तालाप, लिखने वा पढ़ने से निवृत्त होते थे, तब निरन्तर "ओ३म्" उच्चारण करते थे। वे हर एक मे ईश्वर के दर्शन करते थे और प्रत्येक को " मंगलमय परमेश्वर" कह कर पुकारते थे।

"राम आनन्द के निरन्तर उमड़ते स्रोत थे। ईश्वर मे ही वे जीते थे, ईश्वर मे ही उनकी गति और अस्तित्व था—नहीं, नहीं, बल्कि वे ईश्वर के आत्मा ही थे। एक बार उन्होने मुझे लिखा था, "जिन्हे आनन्द लूटने की इच्छा है वे तारागण-प्रकाशित प्रभामय आकाश मे चमकते हुए हीरो का मज़ा लूट सकते है; हंसते हुए बनो और नाचती हुई नदियो से अथाह सुख ले सकते है; शीतल पवन, उष्ण सूर्य-ज्योति और व्यथा नाशक चॉदनी से अनन्त आनन्द पा सकते है, जो सब प्रकृति की ओर से सब की सेवा के लिये निर्विघ्नता पूर्वक नियत किये गये है। जिनका विश्वास है कि उनका सुख किन्हीं विशेष अवस्थाओ पर अवलम्बित है, वे सुख के दिन को अपने से

सदा पीछे हटते और अगिया-बैताल की भांति निरन्तर दूर भागते पावेंगे। संसार में स्वास्थ्य के नाम से पुकारी जाने वाली वस्तु आनन्द का साधन होने के बदले समस्त प्रकृति, स्वर्गों और सुन्दर दृश्यों के गौरव और सुगन्धित-तत्व को छिपाने मे केवल बनावटी परदे का काम देती है।"

... .

"राम पहाडी प्रदेश में ख़ेमे में रहते थे, और रंच हाउस (Ranch house) में भोजन करते थे। यह एक मनोहर स्थल था। विषम वन्य-दृश्य, और दोनो ओर सदा हरित वृक्षों तथा घनी उलझी हुई झाडियों से ढके हुए ऊँचे पर्वत से युक्त था। सैक्रामेण्टो (Secramento) नदी प्रचण्ड वेग से इस घाटी से नीचे उतरती थी। यहीं राम ने अनेकानेक पुस्तके पढ़ी, अपनी उत्कृष्ट कवितायें रचीं और घण्टों तक निरन्तर ध्यानावस्थित रहे। नदी में जहाँ पर धारा बडी तेज़ थी, वे कई सप्ताह तक बराबर एक बडी गोल शिला पर बैठते थे और केवल भोजन के समय घर आते थे, जब वे हमें उत्तम बातें सुनाया करते थे। शास्ता स्रोतो (Shasta Springs) के अनेक लोग उनसे मिलने आया करते थे, और सदा उनका सहर्ष स्वागत किया जाता था। उनके श्रेष्ठ विचार सब पर गहरा और स्थायी प्रभाव जमा देते थे। जो केवल कौतूहल वश उन्हे देखने आते थे, वे भी तृप्त होकर लौटते थे, और सत्य का बीज सदा के लिये उनके हृदयों मे जम जाता था। सम्भव है कि कुछ दिनों तक उन्हें इस प्रभाव वा बीज का ज्ञान न हो, परन्तु काल पाकर उसका अंकुरित होना और उसे पुष्ट तथा प्रबल पेड़ मे बढ़ना अनिवार्य है, जिसकी शाखायें चारों ओर फैल फैल कर संसार के सब भागो को भाईचारे और दिव्य-प्रेम के बन्धन में बट देगी। सचाई के बीज सदा बढ़ते हैं।

"वे बडी बडी दूर तक टहलने जाते थे। इस प्रकार शास्ता स्रोतो में रहते हुए वे साधारण, स्वतन्त्र, प्रवृत्त, और आनन्दमय जीवन बिताते थे! वे बड़े प्रसन्न थे। उन्हे अनायास हंसी आती थी, और जब वे नदी तट पर होते थे, तब उनकी हंसी घर से साफ़ सुनाई पडती थी। वे स्वतन्त्र थे, बालक और साधु की तरह स्वतन्त्र थे। बराबर कई कई दिनो तक वे ब्रह्म-भाव में लीन रहते थे। भारत के प्रति उनकी अचल भक्ति और अन्धकार मे पड़े हुए भारतवासियो को उठाने की उनकी अभिलाषा वास्तव मे पूर्ण आत्म-निग्रह (self-abnegation) थी।

....

"वहॉ से चले जाने के बाद मुझे उनका एक पत्र मिला था। पीछे मुझे पता चला कि यह पत्र उनसे कठिन बीमारी की हालत में लिखा गया था। इसमे लिखा था, एकाग्रता और शुद्ध दैवी भावना की इन दिनो विलक्षण प्रबलता है, और ब्रह्म-भाव बड़े बेग से अधिकार जमा रहा है, शरीर चंचल वासनाओ और निरन्तर परिवर्तन के अधीन है, इस लिये इस दुष्ट अगिया-बैताल से मै अपनी अभेदता कभी नही मानने का। बीमारी में एकाग्रता और आन्तरिक शान्ति बड़ी ही उत्कट हो जाती है। वह नर या नारी, जिसकी बन्द मुट्ठी शारीरिक रोगो आदि सरीखे दाणिक अतिथियो का उचित सत्कार करने में अनाकानो करती है, वास्तव में बडी ही सूम हैं।

"राम सदा हम लोगो से कहा करते थे, 'हर घडी ऐसा अनुभव करो कि, जो शक्ति सूर्य और नक्षत्रो मे अपने को प्रकट करती है, वही मै हूँ; वही, वही तुम हो। इस वास्तविक आत्मा को अर्थात् अपने इस गौरव को लो, ऐसे अमर जीवन का चिन्तन करो, अपनी

इस असली सुन्दरता पर मनन करो और तुच्छ शरीर के समस्त विचारों और बन्धनों को साफ़ भूल जाओ, मानो तुम्हारा इन मिथ्या, और दिखाऊ वास्तविकता (बल्कि छायाओं) से कभी कोई सम्पर्क ही नहीं था। न कोई मृत्यु है, न रोग, न शोक। पूर्ण आनन्दमय इस जीवन पर नित्य ध्यान दो। पूर्ण मंगलमय, पूर्ण शान्तिमय बनो। तुच्छ आत्मा या शरीर से परे होकर ख़ूब सावधान रहो।' यही शिक्षा वे हर एक को देते थे।

....

"वह कैसी वीर, सत्यनिष्ठ, भक्त और ईश्वरोन्मत्त आत्मा है कि जो बिना पैसा-कौड़ी के अपने देश के लिये विदेश जाने का साहस करे।

....

"राम जैसे शुद्ध मनुष्य से भेट करने तथा बात चीत करने और उसे सहायता देने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ, यह विचार आश्चर्यमय है। वे ऊषा (Aurora) की सन्तान थे, और सूर्योदय से सूर्यास्त तक अपना संगीत सुनाया करते थे। उन्हे ज़रा सी भी परवाह नहीं थी कि घड़ी मे क्या समय आया, और लोगों का क्या भाव है, अथवा वे थक गये हैं या नहीं—उनके लचीले और शक्तिशाली विचार सूर्य की चाल से चलते थे, और इस प्रकार दिन उनके लिये चिरस्थायी प्रातःकाल बना रहता था। थोरो (Thoreau) ने कहा है कि—"शारीरिक श्रम के लिये तो लाखो जागे हुए है परन्तु करोड़ों मे कहीं एक ही काव्यमय और दैवी जीवन के लिये (सचेत) है।" (The millions are awake enough for physical labour, but only one in a hundred millions for a poetic

and divine life.) । राम वह दुर्लभ आत्मा थे जो समय समय पर संसार मे आती है।

"They say the Sun is but His photo,
They say that Man is in His image,
They say He twinkles in the stars,
They say He smiles in fragrant flowers,
They say He sings in nightingales,
They say He breathes in cosmic air,
They say He weeps in raining clouds.
They say He sleeps in winter nights,
They say He runs in prattling streams,
They say He swings in rainbow arches.
In floods of light, they say, He marchs."
So Rama told us and it is so.

कहते है सूर्य **उसका** छाया-चित्र मात्र है,
कहते है मनुष्य **उसकी** प्रतिमा है,
कहते है **वह** तारो मे चमकता है,
कहते है **वह** सुगंधित फूलो में मुसक्याता है,
कहते है **वह** बुलबुलो में गाता है,
कहते है **वह** विश्व–पवन मे श्वास लेता है,
कहते है **वह** बरसते बादलो मे रोता है,
कहते है **वह** जाड़े की रातो में सोता है,
कहते हैं **वह** घडघडाती नदियो में दौडता है,
कहते हैं **वह** इंद्र-धनुष की मेहराबो मे झूलता है,

कहते हैं, प्रकाश की वहिमा में, वह यात्रा करता है।
ऐसा ही राम ने हम से कहा और बात भी यही है।

आध्यात्मिक दृष्टि से वे केवल एक विचार के मनुष्य कहे जा सकते हैं। उनके सब उपदेशों में जो महान विचार अन्तर्धारा की तरह बहरहा है वह है देहाध्यास (अहंकार) का त्याग और अपने आत्मा की सृष्टि का आत्मानुभव करना। यही है उस उच्च जीवन का अनुभव, जिसमें परिच्छिन्न 'मैं' भूल जाती है और विश्व-ब्रह्माण्ड की 'मैं' मनुष्य की अपनी 'मैं' बन जाती है। "जो कुछ तू देखता है, वही तू है"। मनुष्य परमात्म-रूप है। मिथ्या अहंकार ही सब बन्धनों का कारण है। इसे दूर करते ही मनुष्य की आत्मा सर्वत्र और सबमें व्यापक सार्वभौम आत्मा बन जाती है। इस उच्च जीवन का अनुभव प्राप्त करना है और वे सभी उपाय राम को अङ्गीकार हैं, जिनसे इसकी प्राप्ति हो सकती है। काँटों का बिस्तर हो या फूलों की सेज, जिससे भी हम आत्मानुभव की अवस्था प्राप्त कर सकें, वही धन्य है। पूर्ण आत्मसंयम वा इन्द्रिय-निग्रह इस अनुभव की आवश्यक पहली दशा है। जो विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विभिन्न विभिन्न उपायों से किया जा सकता है। किसी एक व्यक्ति के विकास निमित्त आवश्यक विचार और विश्वास के विशेष निर्जी संस्कारों और साधनों पर राम कदापि आग्रह नहीं करते; परन्तु अपने मुख्य सिद्धान्तों का सामान्य ढाँचा हमारे सामने रखने की चेष्टा करते हैं, और उन उपायों का वे निरूपण करते हैं कि जिनसे उन्हें अत्यन्त सहायता मिली थी। जब कभी बुद्धि उनके आदर्श में शङ्का करती थी, तो वे पूर्व और पश्चिम के अद्वैतवादी तत्त्वज्ञान के क्रम पूर्वक अध्ययन द्वारा उसका समाधान कर देते थे, और इस प्रकार बुद्धि को उनके सत्य के सामने झुकना

पड़ता था। उनके दार्शनिक मत पर तर्क-वितर्क करने के अभिप्राय से समीप आनेवाले लोगों से वे, इसी प्रकार नियमित रूप से दर्शन-शास्त्र का अध्ययन करने को कहते थे। और इस आधार पर वाद-विवाद करना बिलकुल अस्वीकार करते थे कि वाद-विवाद के द्वारा नहीं, किन्तु वास्तविक, उत्कट और गम्भीर चिन्तन द्वारा ही सत्य की प्राप्ति हो सकतीहै।

जब हृदय राम के आदर्श में संशय करता था, तो वे विभिन्न भावों द्वारा उसे उच्चतम प्रेम में सींच देते थे, और ऐसा अनुभव करा देते थे कि "सब कुछ एक ही है, और प्रेम को द्वैत से कुछ मतलब नहीं"। चित्त के द्वारा वे बुद्धि को भावमयी बनाते थे और बुद्धि के द्वारा चित्त को विचारशील बनाते थे। परन्तु सत्य उनके ध्यान में सर्वोपरि था और इन दोनों से ऊँचा था। केवल अपनी ही बुद्धि और चित्त से सहमत होने के लिये वे इस विधि का आश्रय नहीं लेते थे, परन्तु दूसरों से भी सहमत होने के लिये इसी क्रिया का प्रयोग करते थे। जब किसी का उनसे बुद्धि के कारण मतभेद होता था, तो वे उसके लिये प्रेम के विचार से वाद-विवाद त्याग देते थे और इस प्रकार उससे वह एकता या मतैक्य प्राप्त करते थे, जिस को वे सत्य की प्रतिमा मानते थे और जिसका त्याग वे किसी हालत में भी करने को तैयार नहीं थे। जब किसी मनुष्य के चित्त का उनसे मतभेद होता था, तो चित्त के क्षेत्र को छोड़ कर वे उससे बुद्धि द्वारा मिलाप करते थे। वे एक ऐसे मनुष्य थे जिनसे किसी का मतभेद नहीं हो सकता था। यदि उनके विचार प्रभावित करने में असमर्थ होते थे, तो उनकी पवित्रता और प्रेम का प्रभाव आप पर अवश्य पड़ता था। बिना उनसे बात चीत किये ही आप को प्रतीत होगा कि आप उनसे बिना प्रेम किये नहीं रह सकते। इस प्रकार समस्त वाद-विवाद उनके सामने

शान्त हो जाते थे। और मेरा विश्वास है कि, ऐसे मनुष्य के लेख छोटे दर्जे की समालोचना के अयोग्य है, क्योकि आपसे एकमत होना और एकता स्थापित करना उनका मुख्य उद्देश्य है। आप कोई भी हो, वे तुरन्त वही मानने के लिये तैयार हो जायँगे जो कुछ उनसे मनवाने का आपका विचार होगा।

अन्त मे मै वेदान्त शब्द का अर्थ समझाना चाहता हूँ जो उनके लेखो मे बारम्बार आता है। जिस वेदान्त शब्द का स्वामी राम बड़े प्रेम से व्यवहार करते है, वह उनके लिये अनेकार्थवाची है। धर्म या दर्शन-शास्त्र के किसी विशेष मत के अर्थ मे व्यवहार करके वे उसके भाव को संकीर्ण नहीं बनाना चाहते। यद्यपि किसी कारण से उन्हे इस शब्द से प्रेम होगया था, तथापि वे इसे सदा बदल डालने को तैयार रहते थे, परन्तु जिस भाव को वे इस शब्द से ग्रहण करते थे उसे त्यागने को कभी तैयार नहीं होते थे। इस वस्तु स्वातन्त्रवादी (realist) के लिये गुलाब का नाम कोई चीज़ नही था, इन्हे तो गुलाब और उसकी सुगन्धि से काम था। उनकी शिक्षाओ को समझने और आदर की दृष्टि से देखने के लिये हमे आध्यात्मिक बारीकियो को भूल भुलैयां मे जाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दिन के उज्वल प्रकाश मे जीवन के पथो पर हमारे साथ चलते चलते वे अचानक हमे पकड लेते है; और उदय होते सूर्य की प्रभा मे, गुलाब के खिलने मे और मोती समान ओस-कणो के भंगुरता मे वे हमें वेदान्त की शिक्षा देते है। उनके साथ चलते चलते उनकी शिक्षाओं की प्रतिध्वनियाँ हमे प्रसन्न पक्षियो के अलाप मे, बरसते हुए पानी के रस भरे संगीत मे, और "मनुष्य तथा पशु-पक्षी दोनो" की जीवन-स्पन्दो मे सुनाई देती है। प्रभाव मे फूलो का खिलना मानो उनकी बाइबिल (धर्मग्रन्थ) का खुलना है। साझ मे तारो का चमकना मानो उनके वेदो का प्रकट होना है। बहुरंग जीवन

की जीती-जागती व्यक्तियो मे उनका अलङ्करान मोटे अक्षरो मे लिखा हुआ है।

"समय और विचार मेरे पैमाने थे,
उन्होने अपने रास्ते खूब बनाये,
उन्होने समुद्र को भरा और पत्थर,
चिकनी मिट्टी तथा सीप की तहो को पकाया।"

"Time and thought were my surveyors,
They laid their courses well,
They poured the sea and baked the layers,
Of granite, marl and shell."

मानव-हृदय रूपी कमल के दल उनके प्रमाण के पन्ने थे और उन्हे पता लग गया था कि प्रत्येक नर और नारी ने अपने आप मे वेदान्त के अर्थो को स्थान दे रक्खा है। हर एक उन्नति करती हुई जाति इस सत्य का समर्थन करती है, और हर एक मरती हुई जाति इसके अनुभव का अभाव प्रकट करती है। प्रयेत्क वीर (महापुरुष) इसके प्रकाश का द्योतक है। प्रत्येक महात्मा इसकी दमक फलाता है। प्रत्येक कवि इसके गौरव का स्वाद लेता है प्रत्येक चित्रकार (कारीगर) अपने नेत्रो से अति हर्ष के आँसुओ मे इसे बहाता है। कोई प्रफुल्लित और सन्तुष्ट सुख देखते ही राम उसे वेदान्ती-मुख की उपाधि दे देते थे। कभी किसी ऐसे विजयी का सामना उनसे नही हुआ जिसे उन्होने व्यावहारिक वेदान्ती न कहा हो। जापानियो का दैनिक जीवन देख कर उन्हे वे अपने वेदान्त का अनुयायी कहने लगे। अमेरिकनो के एल्पस् (Alps) और अन्य पहाडो पर चढने तथा नियागरा की तेज़ धारा को तैर कर पार जाने के साहस पूर्वक कठिन कृत्यो को वे वेदान्ती भावना का प्रकाश समझते थे। जब वे यह समाचार पढते कि कुछ व्यक्तियो ने अपने शरीरो को

वैज्ञानिक अनुसन्धान निमित्त अंगच्छेद (vivisection) कराने को अर्पण किया है, तो उन्हे यह अपने तत्वज्ञान का व्यावहारिक स्वरूप सिद्ध होता दिखाई देता। ऐसे अवसरों पर उनका चेहरा दमकने लगता था और नेत्रों मे आँसू भर आते थे, और वे कहते थे, "सचमुच यह सत्य की सेवा है"। सच्ची लोकतन्त्रता (democracy) और सच्चे साम्यवाद (socialism) के आधुनिक आदर्शों मे स्वामी राम को पूर्वीय वेदान्त की अन्तिम विजय दिखाई देती थी।

आन्तरिक पुरुष आन्तरिक प्रकृति की मुख्य एकता के सत्य पर खड़े होकर वे कहते है, केवल वही जीते है जो प्रेम की विश्व-व्यापी एकता का अनुभव करते है। जीवन के सच्चे सुख केवल उन्ही को मिलते है जो भूमि-कमल (lily) और नीले पुष्प (violet) की नसो के ख़ून को अपना ही मानते है। अपने आप मे सब चीज़ो को और सब चीज़ो मे अपने आपको देखना ही असली आँखवाला होना है, जिसके बिना प्रेम और सुंदरता आकर्षक हो ही नही सकती। और बिना प्रेम या आकर्षण के, वे पूछते है, जीवन है ही क्या? इस भावना मे जब किसी व्यक्तिगत-जीवन को वे शरीर और चित्त से ऊपर उठते देखते है, तो उन्हे आकाश मे इन्द्र-धनुष दिखाई देता है और अपार हर्ष से वे उछल पड़ते है। बुद्धि द्वारा वेदान्त के सिद्धान्तो का मान लिया जाना ही उनके लिये वेदान्त नही है। वे प्रेम की पवित्र वेदी पर गम्भीरता पूर्वक शरीर और चित्त की शुद्ध भेट को वेदान्त समझते है। दर्शन-शास्त्र और तर्क, पुस्तक और प्रमाण, पाण्डित्य और अलङ्कार-विद्या से बुद्धि की अनुमति पुष्टि पाकर बढ़ सकती है, किन्तु इन उपायो से राम के वेदान्त की प्राप्ति किसी को नही हो सकती। शरीर और मन का असली और सच्चा त्याग तभी होता है, जब चित्त मे प्रेम की ज्वाला प्रदीप्त होती है। शरीर का मानसिक त्याग और शरीर की हर

एक नस का प्रेम के चरणों में अर्पण और प्रेममयी सेवा में चित्त का समर्पण मनुष्य के भीतरी स्वर्ग के कपाट खोल देता है। राम का वेदांत उस दिव्य चेतनता की सुंदर शान्ति है कि जो शरीर और चित्त के बन्धनों से मुक्त है, जहाँ वाणी मूक हो जाती है, जहाँ सूर्य और चन्द्र का लोप हो जाता है, जहाँ समग्र दृष्टि स्वप्न की तरह हिलोरे लेकर अनंत में चक्कर लगाती है। इस स्थान से राम नीचे सीढ़ी लटकाते हैं कि हम उन तक पहुँच सकें और वहाँ से नीचे की दुनिया के दृश्य देख सकें। अक्षय शान्ति वहाँ बँट रही है और वहाँ मनुष्य पूरी तरह ईश्वर में लीन हो जाता है। वहाँ सब तर्क-वितर्क बंद हो जाता है। वहाँ जो भी हैं अपने चारों ओर केवल देखते और मुसकराते हैं, और हरेक से कहते हैं, "तू अच्छा है" "तू विशुद्ध है", "तू पवित्र है", "तू ही वह है"।

Neither the sun shines there, nor sparkles the moon,
Pranas and sound are hushed into Silence,
All life reposes in Soul's Sweet Slumber,
No God, no man, no cosmos there, no soul,
Naught but golden Calm and Peace and Splendour

न वहाँ सूर्य चमकता है, न चन्द्र जगमगाता है,
प्राण और शब्द मौन हैं,
आत्मा की मधुर निद्रा में सम्पूर्ण जीवन आराम कर रहा है,
न वहाँ ईश्वर है, न मनुष्य, न जगत् है न जीव,
स्वर्णमयी शान्ति, स्थिरता और प्रकाश के बिना वहाँ कुछ नहीं है।

ओम्! ओम्!! ओम्!!!

पूर्णसिंह

भीतर का ध्रुव

(The Pole-Star Within)

स्वामी रामतीर्थ

आनन्द

—०—

ता० १७ दिसम्बर १९०२ को सैन फ्रासिस्को की विज्ञान-सभा में दिया हुआ व्याख्यान।

महिलाओ और भद्रपुरुषो के रूप में मेरे ही आत्मन्!

आनन्द ही सबका अन्तिम साध्य है

राम यूरोपीय और ईसाई राष्ट्रो को इसलिए दोष नहीं देता कि वे अपनी सेनाओ और सैन्यदलो से अन्य राष्ट्रो को क्यो विजय कर रहे हैं। किसी समय राष्ट्र की आध्यात्मिक उन्नति में यह भी एक आवश्यक अवस्था है। भारत को यह अवस्था व्यतीत करनी पड़ी थी; किन्तु बहुत प्राचीन जाति होने के कारण उसने सासारिक सुखो को तराजू में तौला और

निस्सार पाया । जो राष्ट्र आजकल सासारिक ऐश्वर्य और सम्पत्तियो के सग्रह में लिप्त हैं, उन्हे भी यही अनुभव होगा । ये सभी राष्ट्र दूसरे राष्ट्रो को अधीन करने के लिए अपनी सेनाओ से चढाई करने का प्रयत्न क्यो कर रहे हैं ? इन बातों मे ये क्या ढूंढ रहे हैं ? केवल आनन्द, सुख और हर्ष ही ढूँढा जा रहा है । यह सत्य है कि कुछ लोग कहते हैं, हम सुख की नही, किन्तु ज्ञान की खोज मे हैं । दूसरे कहते हैं, हम सुख को नही, किन्तु काम-काज की तलाश मे है । ये सब बातें बहुत ठीक हैं; किन्तु सामान्य मनुष्यो और साधारण प्राणियो के मनो और हृदयो को टटोलिये । आप को पता लगेगा कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से, जानकर या अनजाने, जिस अन्तिम उद्देश्य को उन्होंने अपने सामने रक्खा है, जिस अन्तिम लक्ष्य के लिए वे मब प्रयत्न कर रहे हैं, वह है आनन्द, एकमात्र आनन्द !

आइये, आज यह विचार करें कि आनन्द कहाॅ रहता है; वह महल में रहता है या झोपड़े मे, वह कामिनियो की काति में है अथवा सोने और चाॅदी से मोल ली जा सकने वालो वस्तुओ में; आनन्द का जन्म-स्थान कहा है ? आनन्द का भी अपना एक स्वतंत्र इतिहास है । यह बड़े बड़े भ्रमणो का समय है । वाष्प और विद्युत् ने देश और काल का उच्छेद कर दिया है । ये लम्बी यात्राओ के दिन हैं, और हर एक अपनी यात्रा का वृत्तान्त लिख डालता है । आनन्द भी यात्रा करता है । उसकी यात्रा का कुछ हाल हमें जानना चाहिए ।

आनन्द का इतिहास

लो, हम आनन्द की प्रथम झलक से आरम्भ करते हैं, जो बच्चे को उसकी वाल्यावस्था में मिलता है । शिशु के लिए तो संसार का सारा सुख उसकी माता के आँचल में, प्यारी माता के आँचल में या प्यारी माता की गोद में समाया रहता है । उसके लिए तो सम्पूर्ण आनन्द वहीं है । जिस प्रधान मार्ग पर आनन्द को यात्रा करनी है, उसका पहला पडाव माता का आँचल या माता

की गोद है ! गोद के बच्चे के लिए इस दुनिया मे माता की गोद से बढ़ कर आनन्ददायक वस्तु और कोई नहीं है। बच्चा माता के आँचलो में अपना मुँह छिपा कर कहता है, "माँ ! माँ ! देख ! मै कहा हूँ ?" और प्रसन्न हो हँसता है। वह जी खोल कर खूब हँसता है। पुस्तकें बच्चे के लिए निरर्थक हैं। खजाने उसके लिए व्यर्थ हैं। जिस बच्चे का अभी दूध नह ' छूटा, उसके लिए फलो और मिठाइयो मे कोई स्वाद नही है। उसके लिए सारे संसार का आनन्द माता की गोद मे ही एकत्रित है।

देखो, दो-एक वर्ष बीतने पर बच्चे के आनन्द का केन्द्र बदल जाता है। वह हट कर किसी दूसरी जगह चला जाता है। आनन्द अब खिलौना, सुन्दर गुड्डे-गुड़ियो और बबुओ मे निवास करता है। इस दूसरी अवस्था में बच्चा माता को उतना नहीं चाहता जितना अपने खिलौनों को। कभी कभी बच्चा खिलौनो और बबुओ के लिए प्यारी माता से भी झगड़ा ठानता है।

कुछ महीने या वर्ष और बीतने पर, गुडियो और बबुओ में भी उसे आनन्द नहीं मिलता। आनन्द फिर अपना केन्द्रस्थान बदल देता है। अब इन वस्तुओ मे भी उसकी स्थिति नही रहती। तीसरी अवस्था में जब शिशु बढ़ कर लड़का हो जाता है, तो आनन्द उसके लिए पुस्तको मे, विशेषत: कहानियो की किताबो मे जा ठहरता है। यह एक सामान्य बुद्धि के बालक की बात है। कभी कभी आनन्द उसके लिए दूसरे पदार्थो मे भी होता है, किन्तु हम सामान्य घटना की चर्चा कर रहे हैं। अब बालक का सम्पूर्ण प्रेम और स्नेह कहानी की किताबो मे एकाग्र हो जाता है। अब खिलौनो, बबुओ और गुडियो का आकर्षण जाता रहा है। कहानी की पुस्तको ने उनका स्थान ले लिया। वह पुस्तको क ही न्दर तथा मनोहर मानता है। किन्तु थोड़े समय में ही आनन्द आगे यात्रा करता है।

विद्यालय त्याग कर लड़का विश्वविद्यालय मे प्रवेश करता है। विश्वविद्यालय के जीवन मे उसे किसी दूसरी ही वस्तु मे आनन्द मिलता है; वैज्ञानिक पुस्तके और तात्त्विक ग्रन्थ मान लीजिये। वह उन्हे कुछ समय तक पढ़ता है; परन्तु उसका आनन्द पुस्तको से चल कर विश्वविद्यालय की उपाधियो और सम्मान पाने के विचारो में जा पहुँचता है। वही उसके आनन्द का निवासस्थान, उसकी प्रफुल्लता का मुख्य धाम, उसकी आकाक्षा है। विद्यार्थी विश्वविद्यालय से कीर्ति पूर्वक निकलता है। वह अच्छी आय का पद प्राप्त करता है। और अब इस युवा पुरुष का सारा आनन्द धन मे, ऐश्वर्य मे केन्द्रीभूत हो जाता है। अब (इस चौथी अवस्था मे) उसके जीवन का एक मात्र स्वप्न सम्पत्ति सञ्चय करना, वैभवशाली होना बन जाता है। वह बड़ा आदमी बनना, विपुल वसुधा बटोरना चाहता है। और लो, कार्यालय में कुछ महीने काम करने के बाद जब वह कुछ धन पा जाता है, तब उसका आनन्द किसी दूसरी वस्तु पर जा टिकता है। वह कौनसी वस्तु है? क्या बताने की आवश्यकता है? वह है रमणी। इस पाँचवी अवस्था मे युवा पुरुष को स्त्री की आकाक्षा होती है, और उसकी प्राप्ति के लिए वह अपनी सारी सम्पत्ति खर्च कर डालने को प्रस्तुत है। माता के आँचल से अब उसे कोई आनन्द नहीं मिलता, खिलौनो में अब उसके लिए कोई मोहिनी नही, कहानी की किताबे दूर फेंक दी जाती हैं; और केवल उन्हीं अवसरो पर पढ़ी जाती हैं जब उनसे जीवन के स्वप्न अर्थात् कामिनी की प्रकृति के अनुभव में कुछ सहायता मिलने की आशा होती है। स्त्री के लिए वह सर्वस्व त्याग करने को तैयार है।

विषय-वासना की इन तुच्छ तरंगो के लिए, जो उसके आनन्द का अब मुख्य धाम हो रहा है, कठिन परिश्रम से उपार्जित धन को भी वह लुटा डालता है। युवा कुछ काल तक स्त्री के संग रहता है;

पर देखिये तो सही ! आनन्द अब कुछ आगे दिखायी पड़ने लगता है। प्रारम्भ में जो आनन्द अपनी स्त्री के ध्यान से उसे मिलता था, अब वह नहीं प्राप्त होता। यह साधारण युवक अर्थात् पूर्व के भारत (ईस्ट इण्डिया) के साधारण युवक का उदाहरण है। इस युवक का आनन्द अब स्त्री से चलकर पुत्र-उत्पत्ति में पहुँच जाता है। अब पुत्र उसके जीवन का स्वप्न बन जाता है। वह एक पुत्र के लिए फरिश्ता, देवता के लिए व्यग्र होता है। राम इस देश (अमरीका) की दशा से अधिक परिचित नहीं है; किन्तु भारत में विवाह करने के उपरान्त लोग सन्तान के लिए तरसने लगते हैं और तदर्थ ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। यथाशक्ति वे कोई बात उठा नहीं रखते, वैद्यों की सहायता लेते हैं और सिद्ध-साधकों से आशीर्वाद की प्रार्थना करते हैं। साराश यह कि पुत्र से भाग्यवान होने के लिए जहाँ तक हो सकता है वे सभी कुछ करते हैं।

अब युवक का सारा आनन्द पुत्रोत्पत्ति की आशा में एकत्रित हो जाता है। आनन्द की यात्रा अथवा हर्ष के पर्यटन में छठा पड़ाव पुत्र है। फिर युवक जब पुत्र-लाभ से भाग्यवान् होता है, तो उसके आनन्द की कोई सीमा नहीं रहती, हृदय गद्गद होता है, वह उछल पड़ता है, फूल कर कुप्पा हो जाता है, मानो भूमि से कई हाथ ऊपर उठ गया है, वह चलता नहीं है, मानो हवा में उड़ता है। पुत्र-लाभ उसके अन्तःकरण को आनन्द से परिपूर्ण कर देता है। इस छठी अवस्था में युवक का आनन्द उक्त पुत्र के चन्द्रमुख में एक प्रकार से पराकाष्ठा को पहुँच जाता है। जिस क्षण वह अपने पुत्र का मुख देखता है, वह अत्यन्त आनन्द का समय होता है। अब साधारण मनुष्य का आनन्द अपनी चरम सीमा को पहुँच गया। इसके पश्चात् युवक का उत्साह कम होने लगता है। बच्चा किशोरावस्था को प्राप्त होता है, और आकर्षण वहां से भी खिसकता है। बस, मनुष्य का

आनन्द योंही यात्रा करता रहता है; कभी यहाँ ठहरा, कभी वहाँ ठहरा।

आनन्द का उद्‌गम स्थान

अब हमें विचारना चाहिए कि क्या सचमुच आनन्द ऐसी वस्तुओं में अर्थात् माता के आँचल, गुड्डे-गुडियों, पुस्तकों, वैभव, स्त्री और पुत्र में, अथवा किसी भी सासारिक वस्तु या पदार्थ मे है? आगे बढ़ने के पूर्व, आओ, भ्रमण-शील आनन्द की गतिशील सूर्यप्रकाश मे तुलना करें। प्रभाकर की प्रभा भी यहाँ से वहाँ बिचरती रहती है। एक समय यदि भारत को प्रकाशित करती है तो दूसरे समय यूरोप को। वह आगे ही बढ़ती है। जब सायंकाल की छाया पडती है, तब देखो, कितनी शीघ्रता से सूर्य-प्रभा स्थान बदलती है। झट पूर्वीय अमेरिका मे चमकती है और वहाँ से पश्चिम की ओर बढ़ती है। देखिये, सूर्यप्रकाश कैसा अँगूठों के बल फुदकता फिरता है, इस देश से उस देश मे बिछलता हुआ वह जापान मे अपनी जगमगाहट फैलाता है, इसी तरह और आगे आगे। सूर्य-प्रभा एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करती रहती है; किन्तु ये विभिन्न स्थान, जहा सूर्यज्योति दिखायी पड़ती है, उसके उद्‌गम या निवासस्थान नही है। सूर्य-ज्योति का निवासस्थान तो कहीं अन्यत्र है; सूर्य मे। सूर्य-प्रभा की भाँति इधर से उधर निरन्तर गमनशील आनन्द की परीक्षा भी हमे इसी प्रकार करनी चाहिए। आनन्द कहाँ से आता है! उसका वास्तविक घर कहाँ है? आनन्द के सूर्य की ओर हमे देखना होगा।

पुत्र से धन्य होने वाले भद्र पुरुष का उदाहरण ले लीजिये। वह अपने कार्यालय में बैठा हुआ है। अपने कार्य मे प्रवृत्त है। एकाएक उसे घंटी की टनटन सुनायी देती है। कौनसी घंटी? टेलीफ़ोन की घंटी! वह झपट कर टेलीफ़ोन के पास पहुँचता है; परन्तु संदेश सुनने के समय उसका कलेजा धडकने लगता है। कहावत है कि आने वाले संकटो की छाया पहले ही से पडने लगती है। उसका हृदय धडक रहा है,

पहले तो कभी ऐसा नहीं हुआ था। वह टेलीफ़ोन के पास पहुँच कर संदेश सुनता है। राम राम ! बडा ही दुखदायी समाचार रहा होगा। बेचारा भद्रपुरुष सिसकिया ले ले कर कराह रहा है, उसकी सुध-बुध जाती रही, चेहरे का रंग उड़ गया, पीला, मुर्दनी छाया हुआ मुख लेकर वह झट अपने आसन पर आया, कोट पहना और टोपी दी और कार्यालय से चल दिया, मानो उसे बन्दूक की गोली सी लग गई है। उसने अपने प्रधान से, कार्यालय के अध्यक्ष से भी अनुमति नही ली। कमरे में उपस्थित चाकरों से भी उसने कोई बात तक नही कही। अपनी चौकी (टेबिल) पर फैले हुए कागज पत्रो को भी समेट कर उसने बन्द नही किया। उसका ज्ञान-ध्यान सब जाता रहा, बस, सीधा कार्यालय से चल दिया। उसके साथी चकित रह गये। सडक पर पहुँच कर अपने सामने उसने एक गाडी जाती देखी। वह दौड कर गाडी के पास पहुँचता है और वहाँ डाकिया उसे एक पत्र देता है। इस पत्र में उसके लिए यह समाचार था कि वह एक बडी सम्पति का स्वामी हुआ है। सासारिक दृष्टि से यह संवाद कदाचित् सुखकर हो सकता है। इस मनुष्य ने एक चिट्ठी (lottery) डाली थी और डेढ़ लाख रुपया उसके नाम में निकला था। इस समाचार से उसे प्रसन्न हो जाना चाहिए था। आनन्द से नाच उठना चाहिए था; किन्तु ऐसा नहीं हुआ, ऐसा नही हुआ। टेलीफ़ोन से प्राप्त संदेश उसके हृदय को मसोस रहा था। इसलिए इस नये समाचार से वह सुखी नहीं हुआ। इस ट्राम गाडी मे उसने एक बहुत बड़े राज्य अधिकारी को ठीक अपने सामने बैठा पाया। यह वही अधिकारी था, जिससे भेंट करना उसके जीवन का एक स्वप्न हो रहा था; किन्तु देखो तो इस भद्रपुरुष ने उस राज-कर्मचारी से नजर भी नही मिलायी, अपना मुंह फेर लिया। एक महिला-मित्र का मधुर मुख भी उसे दिखायी पडा। हमारे भद्रपुरुष को इस महिला से मिलकर बातचीत करने की लालसा रहा करती थी। किन्तु इस समय उसकी मधुर मुस्कान के प्रति

वह उदासीन रहा। अस्तु, अब हमें उसे अधिक काल तक संदिग्धावस्था में रखना उचित नही है और न आप ही को देर तक सन्देह में रखना चाहिए। जिस सडक पर इसका घर था वहा वह पहुंच गया। बड़ा हल्ला-गुल्ला हो रहा था। उसने देखा कि धुंए के मेघ आकाश में चढ़ चढ़ कर सूर्य को ढक रहे हैं। उसने देखा कि अग्नि-शिखाये आकाश का चुम्बन कर रही हैं। उसने अपनी स्त्री,दादी, माता तथा अन्य मित्रो को अग्नि-काण्ड के लिए, जिससे उनका घर स्वाहा हो रहा था, रोते और हाय हाय करते देखा। उसने अपने और सब स्नेहपात्रों को देखा तो वहाँ केवल एक को न पाया। उसके आनन्द के उन दिनो का एकमात्र केन्द्र गायब था; प्रिय पुत्र , मधुर छोटा शिशु लुप्त था। वही वहा नहीं था। उसने पुत्र के सम्बन्ध में पूछा; किंतु स्त्री कोई उत्तर न दे सकी। रोना और सिसकना ही उसका प्रत्युतर था, जो अबोध्य न था। सत्य का उसे पता लग गया। उसे मालूम हुआ कि पुत्र घर ही में छुट गया। आग लगने के समय बच्चा अपनी धाय के पास था। धाय बच्चे को पालने में सुला कर कमरे से चली आई थी। आग से जलता देख घरवाले घबडाकर जल्दी में निकल भागे। सब ने यही समझा कि बच्चा किसी न किसी घर वाले के पास होगा। सब के सब निकल भागे और अब उन्हे मालूम हुआ कि बच्चा उसी कमरे में रह गया,जिसे अब अग्नि आवृत्त कर रही रही है। लोग रो रहे थे, दात कटकटा रहे थे, ओठ काट रहे थे, छाती पीट रहे थे, किंतु कोई वश न चलता था। हमारा भद्रपुरुष, उसकी स्त्री, उसकी माता एवम् मित्र और धाय चिल्ला चिल्ला कर एकत्रित जनसमूह से; पुलिसमैनो से, लोगो से अपने प्रिय छोटे बच्चे को बचाने की प्रार्थना कर रहे थे। जिस तरह हो सके हमारे छोटे बच्चे को निकालो। हम अपनी सब सम्पति दे देंगे, आज से दस वर्ष तक जितना धन सञ्चय करेंगे दे देंगे। हम सब कुछ भेंट कर देंगे, हमारे बच्चे को बचाओ,हमारे बच्चे को बचाओ। (आप को याद होगा कि यह

दुर्घटना ऐसे देश में हुई थी, जहा फ़ायर इन्श्योरेंस कम्पनिया उस परिमाण में नहीं हैं जिस परिमाण मे इस देश में हैं।) वे बच्चे के लिए सब कुछ दे डालने को तैयार हैं। सचमुच पुत्र ऐसी ही मधुर वस्तु है, शिशु बडी ही प्रिय वस्तु है, और इसी योग्य है कि सम्पूर्ण सम्पति और वसुधा उसके लिए निछावर कर दी जाय; किंतु राम का प्रश्न है, "क्या पुत्र आनन्द का मूल साधन है, संसार मे सब से अधिक प्रिय वस्तु है अथवा आनन्द की जड़ कहीं और ही है? ध्यान दीजिये। प्रत्येक वस्तु प्रिय पुत्र के लिए अर्पण की जा रही है, किंतु क्या किसी प्रियतर, किसी अन्य वस्तु के लिए स्वयं पुत्र का बलिदान नहीं किया जा रहा है? पुत्र के लिए दौलत दी जा रही है, सम्पति दी जा रही है, किंतु पुत्र किसी दूसरी ही वस्तु के लिए चढ़ाया जा रहा है। आग मे फादने का जो लोग साहस करें उनके प्राण चाहे चले जाय किंतु वह प्यारा शिशु किसी दूसरी वस्तु पर, किसी उच्चतर वस्तु पर निछावर किया जा रहा है। यह अन्य वस्तु अवश्य ही पुत्र मे भी बढ़ कर प्रिय होगी, यही अन्य वस्तु वास्तविक केन्द्र होगी, आनन्द का वास्तविक उद्गम् स्थान होगी। यह अन्य वस्तु क्या है? विचारिये तो सही? वे स्वयं आग में नहीं कूद पड़े। यह अन्य वस्तु अपना आप (आत्मा) है। यदि वे स्वयं आग मे कूदते हैं, तो अपने को भेंट चढाते हैं, और यह करने को वे तैयार नहीं हैं। अन्य सब चीजें तो पुत्र पर निछावर है, और पुत्र उस अपने आप पर निछावर है।

आनन्द का उद्गम-स्थान आत्मा है

अब हमें पता लग गया कि आनन्द की सर्वोपरि अवस्था, परम-प्रिय पुत्र मे नहीं है। पुत्र सुन्दर, प्रिय, और आनन्द का मूल इसलिए बना हुआ है कि वह उस ज्योति से सुशोभित है, जो आत्मा (Self) से निर्गत होती है। ज्योति स्वयं पुत्र में आलथी पालथी लगाये हुए नहीं है। यदि आनन्द-रूपी ज्योति पुत्र में अन्तर्निहित (inherent) होती, तो पुत्र के शरीर में वह सदा बनी रहती। सत्य तो यह है कि पुत्र

के मुख को उद्भासित करने वाली ज्योति अपने भीतर के सरोवर (आत्मा) से निकलती रहती थी। आनन्द का वास्तविक उद्गम-स्थान अपना आत्मा है।

अब हम आनन्द के घर, आनन्द के मूल स्थान के कुछ निकट पहुँच गये हैं। पुत्र इसलिए प्यारा नहीं है कि वह पुत्र है, पुत्र आत्मा के लिए प्यारा है। स्त्री, स्त्री के लिए प्यारी नहीं है, पति, पति के लिए प्यारा नही है, स्त्री आत्मा के लिए प्यारी है, पति आत्मा के लिए प्यारा है। यथार्थ बात यही है। लोग कहते हैं कि वे किसी वस्तु को उसी के लिए प्यार करते हैं; किन्तु ऐसा नहीं हो सकता, नहीं हो सकता। दौलत दौलत के लिए प्यारी नहीं है, दौलत प्यारी है आत्मा के लिए। जब स्त्री से, एक समय जो प्यारी थी, काम नही चलता, तब उसे पति तलाक दे देता है। इसी तरह पति से जो एक समय प्यारा था, जब काम नही चलता, तब स्त्री उसे त्याग देती है। जब दौलत से काम नही चलता, वह छोड दी जाती है। आप नीरो राजा का हाल जानते हैं कि उसे रोम की सुन्दर नगरी अपनी राजधानी अधिक काम की अथवा अधिक रोचक नहीं जान पडी। उसके लिए तो उसे अग्नि-काण्ड के प्रकाण्ड

---

* "न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति। न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति। न वा अरे पुत्राणा कामाय पुत्राः प्रिय भवत्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति। न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति। न वा अरे पशूना कामाय पशवः प्रिया भवन्ति आत्मनस्तु कामाय पशवः प्रिया भवन्ति न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति ’॥ (बृहदारण्यकोनिषद, अध्याय ४, ब्राह्मण ५ याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद मे छठा मंत्र)

उत्सव-दहन में देखना अधिक रुचिकर था। देखो! वह एक निकटवर्ती पहाड़ की चोटी पर चला गया, और विशाल अग्नि काण्ड के दृश्य का सुख लूटने की इच्छा से अपने मित्रों को सारे नगर मे आग लगा देने की आज्ञा दी। रोम भस्म हो रहा था और नीरो चिकारा बजा रहा था। इस प्रकार हमे पता लगता है कि वैभव भी त्याग दिया जाता है, जब उससे हमारा काम नहीं चलता। राम ने एक अति विचित्र घटना अपनी आखो स देखी है। एक समय गंगा नदीमे बडी बाढ़ आरही थी, नदी चढ़ती ही चली जाती थी। एक वृक्ष की शाखा पर अनेक बन्दर बैठे हुए थे। इनमें एक बंदरिया भी थी और उसके कई बच्चे। ये सब बच्चे अपनी मा के पास चले आये। बंदरिया जहा बैठी थी, वहा तक पानी पहुंच गया। वह उचक कर एक और ऊँची डाल पर चली गई। वहा भी पानी पहुंच गया। वह सबसे ऊंची टहनी पर चढ़ गई, किंतु जल वहा भी पहुंच गया। सब बच्चे अपनी मा के अंग मे चिपटे हुए थे, जब पानी उसके पैरों तक चढ गया तो इसने एक बच्चे को पकड कर अपने पैरों तले रख लिया। पानी और भी चढ़ा। बंदरिया ने दूसरे बच्चे को भी पकड कर अपने पैरों नीचे रख लिया। पानी और भी ऊंचा उठा और अपनी रक्षा के लिए उसने तीसरे बच्चे को भी निर्दयता से पैरो के नीचे दबाया। ठीक यही दशा है। लोग और चीजें हमे उसी समय तक प्यारी है जब तक उनसे हमारा स्वार्थ सिद्ध होता है, हमारी इच्छा पूर्ण होती है। उधर हमारे स्वार्थ को धक्का लगने की आशंका हुई इधर हमने सभी चीज़ो को भेंट चढ़ाया।

इस प्रकार हम इस परिणाम पर पहुंचते है कि आनन्द का आसन,

मूल स्थान प्रीति का तारतम्य भाव

कहीं अपने आप मे है। सुख का घर कहीं अपने में तो है; परन्तु है कहा? पैरों में? चरण सकल शरीर के अवलम्ब हैं, उनमें हो सकता है, किन्तु नहीं, चरणों में वह नही है, यदि पैरों मे आनन्द का घर

होता तो पैर संसार की सब वस्तुओं से अधिक प्रिय होते। यह ठीक है कि पैर सब बाहरी वस्तुओं से अधिक प्रिय हैं, परन्तु वे हाथों के तुल्य प्रिय नहीं हैं। तो क्या आनन्द का निवासस्थान हाथों में है? हाथ पैरों की अपेक्षा प्यारे तो हैं किन्तु वहाँ भी आनन्द का घर नहीं है। तो क्या आनन्द नाक या नेत्र में टिका हुआ है? नेत्र हाथों या नाक से अधिक प्रिय अवश्य हैं; परन्तु आनन्द का अवस्थान उनमें भी नहीं है। किसी ऐसी वस्तु की कल्पना कीजिये जो नेत्रों से भी अधिक प्रिय हो। आप कह सकते हैं प्राण। मैं कहता हूँ, पहले समग्र शरीर को लीजिये। समग्र शरीर भी आनन्द का घर नहीं है। हम देखते हैं कि यह समग्र शरीर भी हम त्यागते रहते हैं, प्रति क्षण बदलते रहते हैं। कुछ ही वर्षों में शरीर के प्रत्येक परमाणु का स्थान नये परमाणु ग्रहण कर लेते हैं। आनन्द का स्थान कदाचित बुद्धि-मस्तिष्क या मन में हो, सम्भव है। अब यह बिचारना है कि बुद्धि से भी प्रियतर कोई वस्तु है या नहीं। आओ, विवेचन करें। यदि बुद्धि से बढ़कर मधुर और प्रिय कोई वस्तु ठहरे तो वही आनन्द का स्थान होगी। हम कहते हैं कि हिन्दू जीवन की शब्दावली में प्राण आनन्द का मूल हो सकता है, क्योंकि मेधाशक्ति खोकर भी प्रायः लोग जीना चाहते हैं। दो विकल्पों में वरण करना है। मृत्यु का आलिंगन कीजिये अथवा विक्षिप्त या बावले होकर जीते रहिये। प्रत्येक मनुष्य पागलपन की दशा में भी जीना ही पसन्द करेगा। इससे विदित हुआ कि प्राण की वेदी पर बुद्धि या मेधाशक्ति का बलिदान होता है। तो कदाचित् प्राण, व्यक्तिगत प्राण आनन्द का स्थान, सम्पूर्ण आनन्द का जन्मदाता सूर्य्य होगा। अब विचार कीजिये कि प्राण को आनन्द का वास्तविक स्थान है या नहीं। वेदान्त कहता है नहीं! नहीं! प्राण भी आनन्द का स्थान नहीं है। आनन्द का आश्रम, भीतरी स्वर्ग और भी ऊँचे पर है। व्यक्तिगत शारीरिक प्राण से भी परे है। तो फिर वह है कहा?

राम ने एक बार एक युवक को ठीक मरते समय देखा। वह एक प्रचण्ड रोग से पीडित था। उसके शरीर में तीव्र वेदना हो रही थी. पीडा का प्रारम्भ पैर की उँगलियो से हुआ था। वह पीडा पहले तीव्र नही थी, कुछ देर बाद ज्यों ज्यो ऊपर चढ़ती गई, त्यों त्यो उसका शरीर एंठने लगा। धीरे धीरे घुटनो तक आ गई, और फिर चढ़ती चढ़ती पेट तक पहुँची, तथा जब हृदय-स्थल मे पहुँची तब मनुष्य मर गया। इस युवक के अन्तिम शब्द थे, "ओह! इस जीवन का अन्त कब होगा, प्राण कब पीछा छोड़ेंगे ?" ये उस युवक के उद्‌गार थे। आप जानते है, इस देश (अमरीका) मे आप लोग कहते है, उसने रूह (Ghost) को छोड दिया। भारत मे हम लोग कहते है, उसने शरीर को छोड़ दिया। इससे यह भेद स्पष्ट होता है कि यहाँ (अमरीका में) शरीर को आत्मा मानते हैं और रूह (जीवात्मा) को उसमे बँधी हुई कोई वस्तु समझते है। भारत मे शरीर को आत्मा से भिन्न वस्तु समझते है, और वास्तविक आत्मा को तत्व वस्तु मानते है। वहाँ शरीर के मरने पर कोई अपने को मृत नही मानता, वह मरता नही है, केवल चोला बदल डालता है। और इस लिए उस युवक के मुख से ये शब्द निकले थे, "ओह! यह शरीर मै कब छोड़ूँगा, ये प्राण मुझे कब छोड़ेंगे ?"

अब हमे जीवन से बढ़कर, प्राणो से श्रेष्ठ वस्तु का पता लग गया जो कहती है "मेरे प्राण"; जिसके अधिकार मे प्राण हैं, और जो प्राण तथा जीवन से परे है, और वह वस्तु व्यक्तिगत वा शारीरिक जीवन या प्राण से कही अधिक मधुर है। अब हम देखते हैं कि उस शरीर विशेष के प्राण से परम आत्मा का हित नही साधित हुआ, इसलिए प्राण का बलिदान कर दिया गया, प्राण त्याग दिया गया। इस स्थल मे हमें ऐसी कोई वस्तु दिखायी पड़ती है कि जो प्राणो से

श्रेष्ठ है, जिसके लिए प्राणों का उत्सर्ग कर दिया गया। अवश्य प्राण की अपेक्षा वह कहीं मधुर होगी, आनन्द का मूलस्थान होगी, हमारे आनन्द का मूल या उत्पत्ति-स्थान होगी। अब हमारी समझ में आगया कि प्राण बुद्धि से मधुरतर क्यों हैं ? कारण यही है कि प्राण वास्तविक आत्मा के अर्थात् आपके अन्तर्गत आत्मा के निकटतर हैं। बुद्धि नेत्रों से प्यारी क्यों है ? क्योंकि बुद्धि नेत्रों की अपेक्षा वास्तविक आत्मा के अधिक निकट है। और नेत्र पैरों की अपेक्षा प्रियतर क्यों हैं ? क्योंकि आपके वास्तविक आत्मा से पैरों की अपेक्षा नेत्रों की अधिक घनिष्टता है। प्रत्येक मनुष्य अपने बच्चे को किसी दूसरे के अथवा पडोसी के बच्चे की अपेक्षा कहीं अधिक रूपवान क्यों समझता है ? वेदांत के मत से कारण यही है कि "इस शिशु विशेष को, जिसे आप 'मेरा' शिशु कहते है, आपने अपने वास्तविक आत्मा के सोने से कुछ मढ़ लिया है"। कोई भी पुस्तक, जिसमें आपकी लिखी हुई एक पंक्ति है, कोई भी रचना, जिसमें आप की लेखनी से कुछ लेख है, आपको किसी भी पुस्तक से, चाहे वह प्लेटो (Plato) की ही रची क्यों न हो, कहीं उत्तम मालूम होती है। ऐसा क्यों है ? क्योंकि इस पुस्तक में, जिसे आप अपनी कहते हैं, आपके वास्तविक आत्मा की कुछ जगमगाहट है। यह आपके भीतरी स्वर्ग की प्रभा से सुशोभित हुई है। इस लिए हिंदू कहते हैं कि परम सुख अथवा परमानन्द की असली राजधानी आपके अन्तर्गत है। सम्पूर्ण स्वर्ग आपके भीतर है, समस्त आनन्द का मूलस्थान आप में है। ऐसी दशा में किसी दूसरी जगह आनन्द ढूंढना कितना अयुक्त है।

भारत में एक प्रेमी के सम्बन्ध में यह कहानी प्रचलित है। वह अपनी प्रेयसी की उत्कण्ठा में सूख कर काँटा हो गया था,

सौन्दर्य का रहस्य

मास रह नहीं गया था। निरा ढाँचा पिंजड रह गया था। जिस देश में यह युवक रहता

था, उसका राजा एक दिन उसे अपने दरबार में लाया, और उसकी प्राणेश्वरी को भी अपने सामने बुलवाया। राजा ने देखा कि नारी बड़ी ही कुरूपा है। राजा ने फिर अपने दरबार को सुसज्जित करने वाली अनेक सुन्दरियों को उस प्रेमी युवक के सामने बुलवाया और उससे कहा कि इनमें से किसी को पसन्द कर लो। युवक ने कहा, "हे महाराज! ऐ सम्राट्! हे नृपति! आप मूर्ख क्यों बनते हैं? राजन्! आप जानते हैं, प्रेम मनुष्य को निरा अन्धा कर देता है। महाराज! आप के नेत्र नहीं हैं कि इसे देख सकें। मेरी आँखों से इसे (मेरी प्यारी को) आप देखिये, तब बताइये कि यह सुरूपा है या कुरूपा। मेरे नेत्रों से उसे देखिये।" संसार के समस्त सौन्दर्य्य का रहस्य यही है। यही सारा भेद है। संसार के चित्ताकर्षक पदार्थों के सारे जादू का यही भेद है—ऐ मनुष्यो! तुम आप ही अपनी दृष्टि से सब वस्तुओं को मनोहर बनाते हो। प्रेम के नेत्रों से देखते हुए तुम आपही अपनी प्रभा किसी वस्तु पर डालते हो और फिर उस पर आसक्त हो जाते हो। यूनान के पौराणिक इतिहास में "ईको" *की कथा हमें पढ़ने को मिलती है। वह अपनी ही प्रतिच्छाया पर मोहित हो गई थी। सब सुन्दरताओं का यही हाल है, वे केवल आपके अन्तर्गत स्वर्ग अर्थात् आत्मा की ही प्रतिमा हैं। वे केवल आप की प्रतिच्छाया हैं, और कुछ भी नहीं। जब यह बात है, तो अपनी ही छाया के पीछे दौड़ना वा हैरान होना कितनी मूर्खता है।

राम एक ऐसे बच्चे की घटना जानता है, जिसने अभी अभी रेंगना अथवा घुटनों के बल चलना सीखा ही था। बच्चे ने अपनी ही छाया देख कर समझा कि यह तो कोई विचित्र वस्तु है, महत्त्वपूर्ण वस्तु है। बच्चे ने छाया का सिर पकड़ना चाहा, वह उसकी ओर रेंगने लगा। छाया भी रेंगने लगी इधर बच्चा खिसका, उधर छाया

भी खिसकी। छाया का सिर पकड़ने में असमर्थ होकर बच्चा रोने लगा। बच्चा गिर पड़ता है, छाया भी उसके साथ गिर पड़ती है। बच्चा फिर उठता है और छाया का पीछा करता है। इतने में माता को उस पर दया आई और उसने बच्चे के हाथ से उसी का सिर छुआ दिया। अब देखिये, छाया का सिर भी हाथ में आ गया। अपना ही सिर पकड़िये और छाया भी पकड़ में आ जाती है। स्वर्ग और नरक आप ही के भीतर हैं। शक्ति, आनन्द, और जीवन का मूल आपके भीतर है। मनुष्यों, प्रकृति और राष्ट्रों का ईश्वर आपके भीतर है। ऐ संसार के मनुष्यो ! सुनो, सुनो, यह पाठ मकानों की छतों से, बड़े-बड़े नगरों के चौराहों से, सब राज मार्गों से घोषित होने योग्य है। यह पाठ उच्च स्वर से घोषित होने के योग्य है। यदि तुम किसी वस्तु को प्राप्त करना चाहते हो, किसी पदार्थ की अभिलाषा करते हो, तो छाया के पीछे न पड़ो। अपना ही सिर छुओ। अपने ही भीतर प्रवेश करो। यह अनुभव होते ही आपको जान पड़ेगा कि तारे आपही के हस्त-कौशल (दस्तकारी) हैं। आप देखेंगे कि प्रेम की सभी वस्तुयें, समस्त मनोहर और लुभाने वाले पदार्थ आपके ही प्रतिबिम्ब या छाया मात्र है। यह कितनी अनुचित बात है कि "एक टोपी और घंटियों के लिए हम अपने प्राण दे देते हैं, और जी तोड़ परिश्रम से हम केवल जलबुदबुद कमाते हैं।"

भारत में एक नारी की मनोरंजक कथा है। घर में उसकी सुई खो गई। वह गरीबी के कारण अपने घर में दिया नहीं जला सकती थी,

---

*ईको का अर्थ प्रतिध्वनि है। ग्रीक लोगों की दंतकथा में यह एक देवी मानी जाती है। ज्यूपिटर की स्त्री ज्यूनो के शाप से उसकी वाक् शक्ति दुर्बल हो गई थी, ऐसी मान्यता है, और इस शाप के कारण उस समय से उसको प्रतिध्वनि का रूप प्राप्त हुआ है।

इसलिये वह बाहर निकल गई और सुई गलियों में ढूँढने लगी। किसी ने पूछा, "गलियों में क्या खोज रही हो?" उसने उत्तर दिया, "अपनी सुई"। भलेमानुस ने पूछा, "सुई कहाँ खोई थी?" नारी ने कहा, "घर में"। उसने कहा, "जो वस्तु घर में खोई थी, उसकी खोज गलियों में करना कैसी मूर्खता है"। नारी ने कहा, "मै घर में चिराग़ नही जला सकती और सडक पर लालटेन है"। वह घर मे नहीं ढूँढ सकती थी; किन्तु कुछ न कुछ उसे करना ही था, इसलिये गलियों की ही ख़ाक छानने लग पडी।

लोगो की ठीक यही दशा है। स्वर्ग, दिव्यलोक, आनन्दधाम सब कुछ आप के भीतर ही हैं, फिर भी गली कूचो के पदार्थों में आप आनन्द ढूँढते-फिरते हैं, उस वस्तु की खोज बाहर-बाहर, इन्द्रियो के विषयो में करते रहते हैं। यह कैसा आश्चर्य है!

एक और दूसरी अति मनोहर कथा एक पागल मनुष्य की भारत में प्रचलित है। वह दीन लडको के पास आया और कहा कि नगर-नायक (Mayor) एक बडा भोज देने की तैयारी कर रहा है, और सब लड़को को आमन्त्रित किया है। आप जानते हैं कि लड़के मिसरी और मिठाई पसन्द करते हैं। इस पागल आदमी से नगर-नायक के भोज के सम्बन्ध में निश्चय पाने पर लडके नायक के घर दौड गये; किन्तु वहाँ भोज कहाँ, कुछ भी नहीं था। लडके चक्कर खा गये, कुछ देर के लिये उनका चेहरा उतर गया, और हँसी होने लगी। लडको ने पागल से पूछा, "कहिये महाशय! आप तो जानते ही थे कि यह बात मिथ्या है, फिर आप आये क्यो?" उसने कहा, "कदाचित् भोज सचमुच न हो, बात सच निकले और मै रह जाऊँ।" वह चूकना नहीं चाहता था, इसी कारण से उसने बालको का अनुसरण किया।

ठीक यही दशा उन लोगों की है, कि जो अपनी ही कल्पना से, अपने ही आशीर्वाद से फूलों को सुन्दरता प्रदान करते है, इस संसार की प्रत्येक वस्तु को चित्ताकर्षक बनाते हैं, अपनी हो कल्पना से पागल मनुष्य को भाँति, प्रत्येक वस्तु को वाछनीय करते हैं, और फिर उसके पीछे इसलिये दौडते है कि कही वे उससे वंचित न रह जायँ।

उपसंहार। अपने भीतर स्वर्ग का अनुभव करो, तब एक साथ ही सब आकाक्षाये पूर्ण हो जायँगी, सब कष्टों और दुःखो का अन्त हो जायगा।

"Lo ! the trees of the wood are my next of kin,
And the rocks alive with what beats in me.
The clay is my flesh, and the fox my skin,
I am fierce with the gadfly and sweet with the bee.
The flower is naught but the bloom of my love
And the waters run down in the tune I dream.
The sun is my flower uphung above,
I cannot die. though for ever death,
Weave back and fro in the warp of me.
I was never born, yet my births of breath
Are as many as waves on the sleepless sea"

"देखो ! वन के वृक्ष मेरे कुटुम्बी हैं।
और मुझ में जो धडक रहा है उससे पहाड सजीव हैं।
मिट्टी मेरा मास है, और लोमडी मेरा चर्म है।
मै डास (Gadfly) मे क्रूर और मधु मक्खी में मधुर हूँ।
फूल मेरे प्रेम के विकास के सिवाय और कुछ नही।
और नदियाँ मेरे स्वप्न के स्वर में बह रही हैं।
आकाश में लटका हुआ सूर्य मेरा पुष्प है।

मैं मर नहीं सकता, मृत्यु चाहे सदा मेरे ताने बाने में ऊपर नीचे भटकती रहे।

मै अजन्मा हूँ, तथापि मेरे श्वास के जन्म उतने ही हैं, जितने निद्रा-रहित समुद्र पर लहरे।"

ओह! स्वर्ग तुम्हारे भीतर है, इन्द्रियो के विपयो में आनन्द की खोज मत करो, अनुभव करो कि आनन्द स्वयं मुझ में है।

ओ३म्! ओ३म्!! ओ३म्!!!

आत्म-विकास।

(विज्ञान-सभा के भवन में स्वामी राम का व्याख्यान)

महिलाओं और सज्जनो के रूप में मेरे ही आत्मन्!

आज रात्रि को आत्म-विकास के विषय में हम लोग कुछ सुननेवाले हैं; दूसरे शब्दों में, जीवन कोटि पर, अथवा आध्यात्मिक उन्नति के क्रम पर, अथवा यों कहिये स्वार्थ-परता की विशुद्धता के दर्जों पर हम कुछ सुनने वाले हैं। कदाचित् जिस सिद्धांत पर हम पहुँचेंगे, वह चकित कर देगा।

विषय।

अपने सामने आप जो चक्र देख रहे हैं, वह एक सीधी रेखा और वृत्तो का बना हुआ है। आप पूछेंगे कि इनका क्या उपयोग है? चक्रो का आत्मा के विकास से क्या सम्बन्ध है? कुछ लोग अपने चित्तों मे कह रहे होंगे—ये वृत्त नहीं हैं, ये बड़े ही वक्र हैं, ये तो अण्डाकार वृत्त हैं; किन्तु इन वृत्तों से जीवन की उन कोटियों को प्रकट करना है कि जो ठीक गोल नहीं हैं; जो टेढ़ी और अण्डाकार कही जा सकती हैं, और इससे वृत्तो की अपूर्णता का समर्थन होता है। वे अपनी अपूर्णता और पथ-विमुखता से ठीक उसी को दर्शा रहे हैं, जिसे उन्हे प्रकट करना है।
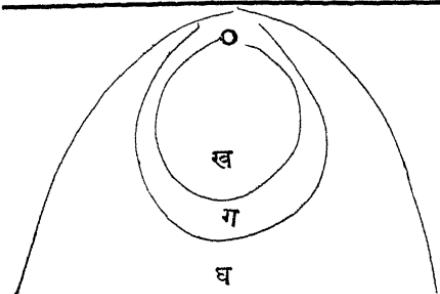
वृत्त।

जीवन और उसकी कोटियाँ क्या हैं, इस सम्बन्ध में कुछ कहने के पूर्व हमें इन वृत्तो के सम्बन्ध मे कुछ शब्द कहने पड़ेंगे।

यह सबसे छोटा वृत्त है, बहुत ही छोटा बिन्दु है। यह इससे और भी छोटा बनाया जाना चाहिए था, किन्तु इस आशंका से नहीं बनाया गया कि उस अवस्था में दिखायी न पड़ेगा; इसलिये इतना बडा बनाया गया है कि दिखायी पड़े। इसके बाहर एक दूसरा वृत्त है, जो छोटे शिशु वृत्त से बडा है, और उसके बाहर तीसरा है और उसके भी बाहर चौथा है। इनमें एक विशेषता यह है कि वृत्त जितना-जितना फैलता और बढ़ता जाता है, वृत्त का केन्द्र उतना ही उस सीधी रेखा पर के प्रारम्भिक बिन्दु (क) से हटता जाता है जो कि सब वृत्तो की सामान्य स्पर्श रेखा है। केन्द्र पीछे हटता जाता है, व्यासार्द्ध (radius) और वृत्त बढ़ता जाता है। यदि वृत्त का केन्द्र प्रारम्भिक बिन्दु (क) के बहुत नगीच हो, और नगीच करते-करते उसे यहाँ तक सन्निकट कर दिया जाय कि वह प्रारम्भिक बिन्दु (क) के साथ एक हो जाय, तो वृत्त भी एक बिन्दु बन जाता है। इस प्रकार बिन्दु एक ऐसे वृत्त की एक अत्यन्त संकुचित दशा है, जिसका केन्द्र प्रारम्भिक बिन्दु के बहुत ही निकट आ गया है। और जब केन्द्र प्रारम्भिक स्थान से दूर हटता जाता है, तब व्यासार्द्ध (radius) बढ़ता-बढ़ता अनन्त हो जाता है; अथवा जब केन्द्र अनन्तता तक सरक जाता है, तब वृत्त सीधी रेखा हो जाता है। इस प्रकार सीधी रेखा उस वृत्त की अन्तिम अवस्था है, कि जिसका केन्द्र अनन्तता तक हट जाता है अथवा जिसका व्यासार्द्ध अनन्त है।

दूसरी विशेषता हम यह देखते हैं कि वृत्त जितना ही बडा होता जाता है, उतना ही वह सीधी स्पर्श रेखा के सन्निकट होता जाता है, और वृत्त ज्यो-ज्यो बढ़ता जाता है, त्यो-त्यो उसका बाँकपन घटता

जाता है। इस प्रकार हमारे ध्यान में यह आता है कि बड़ा वृत्त, जिसका केन्द्र (घ) है, (ग) केन्द्र वाले भीतरी वृत्त की अपेक्षा (क) बिन्दु पर सीधी रेखा के कहीं अधिक तुल्य है। और फिर यह भीतरी वृत्त (ग) केन्द्र वाला अपने भीतरी वृत्त (ख) केन्द्र वाले की अपेक्षा उसी (क) बिन्दु पर सीधी रेखा के कही अधिक समान है। इसी कारण से पृथ्वी वास्तव मे गोल होने पर भी जब आप उसके किसी भाग पर दृष्टि डालते हैं, चिपटी दिखाई पड़ती है। और पृथ्वी-खण्ड के वृत्त यन्त्र-रहित नेत्रों के लिये अनन्त बड़े हैं। वृत्तो के सम्बन्ध में इतना ही बहुत है।

जीवन ! जीवन का मुख्य लक्षण क्या है ? प्राणहीनता अथवा निर्जीवता से जीवन का भेद किस बात से किया जा सकता है ?

जीवन । गति, उद्योगशक्ति, अथवा कर्मण्यता से। प्रश्न का साधारण उत्तर यही है। जीवन की वैज्ञानिक परिभाषाये भी इसी परिभाषा में समा सकती हैं। जीवित मनुष्य हिलडुल सकता है, चलता-फिरता है और सब तरह के काम कर सकता है। रक्षित मृतक शरीर (mummy) शक्ति के ये रूप, अथवा यह गति, अथवा जीवित मनुष्य की उक्त हरकते नहीं प्रकट कर सकता। मृतक प्राणी इधर-उधर नही जा सकता; जीवित प्राणी चलता, दौडता, सब प्रकार के काम करता है। निर्जीव पौधा बढ़ नहीं सकता, वह गति से शून्य है और कर्मण्यता से बिल्कुल रहित है। जानदार पौधा बढ़ता है और हरकत प्रकट करता है।

फिर हम देखते हैं कि जीवन के प्राय: चार भेद किये जाते हैं, अथवा यह जगत् चार मुख्य वर्गो वा कोटियो में विभक्त है:—

जीवन की चार कोटियाँ और उनकी तुलना ।

खनिज, उद्भिज, पशु और मनुष्य। इस विभाग में हम यह देखते हैं कि मनुष्य पशुओ की अपेक्षा अधिक उद्योगशक्ति, अधिक गति और उच्च कोटि का व्यापार प्रकट करते हैं। पशु केवल चल फिर सकते हैं, दौड सकते हैं या पहाडो पर चढ़ सकते हैं; किन्तु मनुष्य इन सब कामो के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ करता है। वह और भो अनेक बातें करता है। वह उच्चतर कोटि की उद्योगशक्ति अथवा गति प्रकट करता है। दूरबीनो के द्वारा वह नक्षत्रो तक पहुँच सकता है। पशु ऐसा नहीं कर सकते। मनुष्य पशुओ पर शासन कर सकता है। वह वाष्प और विद्युत् के द्वारा देश और काल का उच्छेद करता है। उसमें इतनी तेज़ी प्राप्त है कि जिसका पशुओ मे पता तक नहीं। वह संसार के किसी भी भाग में सन्देश तुरन्त भेज सकता है। वह हवा मे उड सकता है। संसार में यह है मनुष्य की गति, मनुष्य का उद्योग और शक्ति का प्रादुर्भाव। शक्ति को स्पष्ट या प्रकट करने मे पशु मनुष्य से कहीं कम है, और हम देखते है कि जीवन की श्रेणी में मनुष्य की अपेक्षा पशु बहुत नीचे है।

अब उद्भिज-कोटि की तुलना पशु-कोटि से कीजिये। शाक भी बढ़ते हैं, उनमें गति है, किंतु एकमुखी। वे केवल एक स्थान मे बढ़ सकते हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान को नही जा सकते, वे एक स्थल पर जमे हुए है। सब दिशाओं में उनकी शाखाये जाती हैं और जड़ें बहुत गहराई तक प्रवेश करती हैं; किंतु पशु-कोटि मे क्रिया का जितना आविर्भाव या प्रकाश होता है, उसकी अपेक्षा वनस्पति मे बहुत कम है। और इस प्रकार हम देखते है कि जीवन की कोटि में वनस्पतियाँ पशुओ की अपेक्षा बहुत नीचे हैं। खनिज पदार्थो में कोई जोवन नहीं है। यदि हम जीवन की वही व्याख्या करे, जो जीवविद्या-विशारद (Biologist)

करते हैं, तो उनमें कोई जीवन नहीं है। परन्तु यदि क्रियाशक्ति के आविर्भाव और प्रकाश से हम जीवन की कोटियो पर ध्यान दें, तो हम कह सकते हैं कि खनिज पदार्थ भी एक प्रकार की गति प्रकट करते हैं। उनमें भी परिवर्तन होता है, उनके लिये भी परिवर्तन अनिवार्य्य है।

इस प्रकार उनमें भी जीवन के अति न्यून लक्षण हैं। परन्तु जीवन की अधम श्रेणी में होने से उनका जोवन बहुत ही तुच्छ है, क्योंकि उनके द्वारा प्रकट होने वाली कर्म-शीलता, गति, उद्योगशक्ति तुच्छ और अति सूक्ष्म है। इससे स्पष्ट है कि जीवन जिस का लक्षण गति है, उसकी श्रेणी अपनी गति या उद्योग-शक्ति के दर्जों के अनुसार है।

प्रकृति की युक्ति (Plan) यह है कि संसार में कुछ भी नवीन नही होना चाहिए। हम देखते हैं, कि इस बाह्य अनेकता

प्रकृति की युक्ति।

और बाह्य बहुरूपता के होते हुए भी प्रकृति या विश्व बहुत कृपण है। प्रेमी के लोचनो से एक आँसू का टपकना जिस क़ानून के अधीन है, वही क़ानून सूर्य्यों और तारो के भ्रमण का भी शासनकर्ता है। छोटे से छोटे अणु से लगा कर अत्यन्त दूरस्थ नक्षत्र तक को उन्हीं साधारण क़ानूनो द्वारा हम नियन्त्रित और शासित होते देखते हैं, कि जो पोरो पर गिने जा सकते हैं। प्रकृति पुनः पुनः अपने को दोहराती है। इस विश्व की तुलना पेच (Screw) या चक्राकार पदार्थ (Spiral) से की जा सकती है, जिसका प्रत्येक दन्दाना या चक्र एक ही ढंग का है, अथवा प्याज़ से इसकी तुलना कर सकते हैं। एक पर्त उतार डालिये, वैसी ही दूसरी पर्त मौजूद है, अब इसको भी उतार डालिये फिर वैसे ही और हमारे सामने है। इसको भी छील डालिये और

ठीक ऐसी ही एक और पर्त आप देखेंगे। ठीक इसी प्रकार साल भर में जो कुछ होता है, वही छोटे परिमाण पर हर दिन में घटित होता रहता है। प्रातःकाल का मिलान वसन्त ऋतु से किया जा सकता है। दोपहर की तुलना ग्रीष्म से हो सकती है। तीसरे पहर और सायंकाल की तुलना शरद् से हो सकती है, और रात्रि की जाड़े से। इस प्रकार चौबीस घंटो में छोटे परिमाण में सम्पूर्ण वर्ष का दौरान हो जाता है। गर्भ मे मनुष्य आश्चर्य्यजनक शीघ्रता से मानवस्वरूप धारण करने से पहले की सब योनियो के, जिनमे उसने वास किया है, अनुभवो को दोहरा डालता है। मानव-शिशु के रूप मे आने के पूर्व पिंड (Foetus) गर्भाशय में क्रम से मछली, कुत्ता, बन्दर इत्यादि के रूपो को धारण करता है। इस प्रकार विकासवाद के साधारण नियम के अनुसार अथवा सारे संसार का शासन करनेवाले साधारण क़ानून के अनुसार हम पता लगाना चाहते हैं कि शरीर अथवा मनुष्य की आकृति में क्या खनिज, उद्भिज और पशु-कोटियों की भी व्यवहार रूप से पुनरुत्पत्ति है ?

क्या मनुष्य के रूप मे ऐसे लोग नहीं हैं, जो मानो खनिज ही हैं? मनुष्य के रूप में क्या ऐसी व्यक्तियाँ नही हैं जो उद्भिज कोटि की अवस्था में हैं ? और क्या ऐसे लोग भी मनुष्य रूप में नहीं हैं जो पशुकोटि की दशा में है? हम उन मनुष्यो को भी देखना चाहते हैं, जो वास्तव में मनुष्य हैं, और जो मानव रूप में देवता हैं।

पहले हम नैतिक (maorl) और आध्यात्मिक (Spiritual) खनिजो को लेते हैं। देखने में खनिज-कोटि किसी प्रकार

की गति प्रकट नही करती, बाहर से किसी प्रकार की उद्योगशक्ति

खनिज नही दिखाती; किन्तु तथापि उसमे किसी प्रकार

मनुष्य। की उद्योगशक्ति, कर्मण्यता और गति ज़रूर है, क्योंकि हम खनिजो को बदलते देखते हैं, खनिजो में भी बढ़ने और बिखरने की क्रिया पायी जाती है। वे घन (crystallized) होते और बढ़ते है। समुद्र के मुक़ाबले मे हमें अचल दिखाई पडनेवाली यह पृथ्वी, अथवा सुदृढ़ प्रतीत होनेवाली यह पृथ्वी उभरती, दबती, बदलती, और लहरो की तरह नीची-ऊँची होती रहती है। इस प्रकार खनिजो मे एक प्रकार की गति है, यद्यपि बहुत करके अस्पष्ट है।

अब, मनुष्य के रूप मे वे कौन हैं जिनमें खनिजो की सी ही गति है; दूसरे शब्दो में, जिनमे उसी प्रकार की गति है जैसी बच्चो की फिरकी या लट्टू मे। फिरकी या लट्टू घूमता है, बार बार चक्कर काटता है, वह डोलता है, और जिस समय वह बड़े वेग से घूमता रहता है, लडके आकर ज़ोर से तालियाँ बजा-बजा कर प्रसन्नता से कहते हैं, यह अचल है, यह डोलता नही है। यह आत्म-केन्द्रित गति (Self-centined motion) है, यह चकराती हुई गति है, किंतु चक्कर का केन्द्र शरीर के भीतर होता है, यद्यपि गति की अत्यन्त उग्रता के समय देखने मे कोई गति प्रतीत नहीं होती।

आप जानते हैं कि, इस संसार में सब गतियाँ वृत्ताकार हैं, सीधी रेखा में कोई गति नहीं होती। सम्पूर्ण विज्ञान-शास्त्र इसे सिद्ध करता है। इस कारण गति के आविर्भाव को करने के लिये हम वृत्तो का उपयोग करेंगे। गणित-विद्या मे गति का निरूपण रेखाये करती है। इस मामले मे वृत्ताकार रेखाओ से खूब काम निकलेगा।

इस प्रकार खनिज कोटि में जो गति हम पाते हैं, वह फिरकी की गति के तुल्य है। आपके सामने जो चक्रों का आकार है, उसमें जो सबसे छोटा वृत्त है और जो बिंदु कहा जा सकता है, वह इस गति को भली भाँति प्रकट कर सकता है। मनुष्यों में वे कौन हैं, जिनकी गति लट्टू की गति के तुल्य है, जिनका चक्कर या गति का मार्ग एक बिंदु-मात्र है, जिनका जीवन खनिज पदार्थों का सा जीवन है ? ज़रा विचार कीजिये। स्पष्टतः ये वही मनुष्य है, जिनके सब काम काज एक छोटे से बिन्दु वा अनात्मा अर्थात् साढे तीन हाथ लम्बे शरीर के छोटे से वृत्त में एकत्रित हैं। वे अधम कोटि के स्वार्थी हैं। ये वे लोग है, जिनके सर्व कार्य इन्द्रिय-तृप्ति के लिये हुआ करते हैं। ये लोग विभिन्न प्रकार के कार्य करते है, सब तरह के परिश्रम करते है; किंतु इनका उद्देश्य केवल अधोगति करनेवाले सुखों की तलाश है। इन्हे स्त्री और बच्चो के भूखो मरने की परवाह नहीं होती, पड़ोसी मरें या जियें इन्हें क्या, कुछ भी हो वे मद्यपान करेंगे ही, मौज उड़ावेंगे ही, और हीन प्रकृति की आज्ञाओं का पालन अवश्य करेंगे। उनकी आचार भ्रष्ट करनेवाली आवश्यकतायें पूरी होनी ही चाहिए, चाहे उनके कुटुम्ब और समाज के हितों की हानि ही हो। चाहे उनके स्त्री और बच्चे भूखों मरें उन्हें कुछ परवाह नही, अगर उनकी विषय-वासना की तृप्ति होती हो। उनकी सब चेष्टाओं का केन्द्र, या जिस नाभी (focus) के इर्द गिर्द वे घूमते है, अथवा जिस सूर्य का वे चक्कर काटते है वह, या उनके पथ (orbit) का केन्द्र एकमात्र तुच्छ शरीर है। उनकी कर्मशीलता या गति निर्जीव गति है। मनुष्य में यही खनिज - जीवन है। संसार के इतिहास में मनुष्य के रूप में अति सुहावने और मूल्यवान खनिज हुये है। आप जानते हैं हीरे भी खनिज–जगत

की वस्तु हैं। लाल, मोती, रत्न और सब तरह के क़ीमती पत्थर भी इसी कोटि के पदार्थ है।

रोम (Rome) के इतिहास में एक वह समय था, जब नीरो(Nero), टाइबेरियस (Tiberins) तथा अन्य सीजर (Caesars) नाम के राजा थे, जिनके नाम लेना भी आप के कान अपवित्र करना है। बड़े-बड़े शक्तिशाली शासक और सम्राट् हो गये है, किन्तु वे अति मूल्यवान खनिजों के सिवाय और कुछ भी नहीं थे; मनुष्य नही थे। इन सम्राटों को आप क्या समझेंगे, जो अपने ज्ञात संसार के राजा तो थे, परन्तु अपने राज्य के हित की तिनका भर भी परवाह नहीं करते थे। जो अपने मित्रों और सम्बन्धियों का कुछ भी विचार नहीं रखते थे। और जो अपनी पाशविक वासनाओं की तृप्ति में ही लगे रहते थे, चाहे उनकी रानियों, प्रजा तथा मित्रों के साथ कुछ ही हो रहा हो। आप उनके विषय और उनके किये हुए पातकों के विषय में भली भाँति जानते हैं। इनमें से एक को समस्त दिन सुस्वादु व्यंजन खाते रहने का दुर्व्यसन हो गया था। जब कोई अत्यन्त सुस्वादु पदार्थ उसके सामने आ जाता था, तो उस समय तक वह अपना मुँह नही फेरता था, जब तक कि पेट बिल्कुल जवाब नहीं दे देता था। तदुपरान्त औषधियों की सहायता से सब कुछ उगल दिया जाता था। पेट खाली होने पर फिर वह खाने में लग्गा लगा देता था। दिन भर में इस क्रम को वह बारम्बार करता था। अग्नि-काण्ड देखने की आकांक्षा पूरी करने के लिए इसने संसार की राजधानी जला दी थी। इसको आप क्या समझते हैं? निस्सन्देह ये मूल्यवान हीरे थे, रत्न थे, किन्तु मनुष्य नहीं थे। ये हैं मानव-जगत् में खनिज।

अब हम मनुष्य रूप में वनस्पतियों की अवस्था पर आते हैं। खनिज मनुष्य के अत्यन्त स्वार्थपूर्ण छोटे वृत्त से उनका वृत्त बड़ा है।

उद्भिज मनुष्य। इनका वृत्त बडा है और ये लोग खनिज-मनुष्य से बहुत ऊँचे है। इनकी कर्म-शीलता की तुलना घुड़दौड के घोड़े की गति से की जा सकती है। घुड़दौड़ के घोड़े का वृत्त फिरकी या लट्टू के वृत्त से बडा है। चक्र मे उनका वृत्त दूसरे दायरे से, जिसका केन्द्र (ख) है, दर्शाया गया है। ये लोग कौन है ? अन्य मनुष्य के स्वार्थ को भेंट चढाकर ये लोग केवल अपनी इन्द्रियासक्ति को संतुष्ट करने के लिये अपने काम मे नही लगते। वे कुछ और साथियो के हित का भी ध्यान रखते हैं। ये वे लोग हैं, जो अपनी स्त्री और बच्चो के पारिवारिक वृत्त के इर्दगिर्द घूमते हैं। स्वार्थी खनिज-मनुष्यो से ये कही श्रेष्ठ है, क्योकि ये केवल अपने ही शरीर का हित नही साधते, किंतु अपनी स्त्री और बच्चो के पक्ष का भी ध्यान रखते है। इस दूसरे वृत्त मे जिस प्रकार अनेक छोटे वृत्त समा जाते है, उसी प्रकार ये लोग भी अपने तुच्छ व्यक्ति के अतिरिक्त अनेक व्यक्तियो की भलाई करते है। किंतु क्या इन्हे निःस्वार्थी कहना चाहिए ? कदापि नही। इन लोगो के विषय में आत्मा का केवल कुछ विकास हो गया है। खनिज-मनुष्य के विषय में आत्मा इस तुच्छ शरीर तक ही परिमित था। और इन लोगो के विषय में, पारिवारिक वृत्त अर्थात् उनके स्त्री और बच्चो से आत्मा की ठीक एकता हो गई है। यह भी स्वार्थपरता है, किन्तु कुछ शुद्धताई लिये हुए है। ये लोग अपनी पहुँचभर बड़े भले आदमी हैं। किन्तु उस दूसरे वृत्त की ओर देखिये, जो इनकी हालत को दर्शाता है। यह अपने भीतर की सब वस्तुओ की ओर झुका हुआ है। यह झुकाव (Concavity) क्या चीज़ है ? प्रेम-भुजाओ में लिपटाना अथवा आलिंगन करना झुकाव है। अपनी भुजाओ को फैलाकर एक वृत्त बनाइये। यही झुकाव (Concavity) है। यह वृत्त कुटुम्बियो के लिये झुका हुआ है, उन सब बिन्दुओ की ओर मुख

किये हुए है। जिनका यह आलिंगन करता है, किन्तु अपने से बाहर के सारे संसार की ओर पीठ फेरे हुए है।

ये लोग अपनी शक्ति के अनुसार जहाँ तक इनका झुकाव या फैली हुई भुजाओं की पहुँच है, बहुत अच्छे हैं। किन्तु सारे संसार की ओर ये अपनी पीठ फेरे हैं। वनस्पति-मनुष्य के इस दूसरे वृत्त में विचरने वाले मनुष्यों की स्वार्थपरता उस समय खुल जाती है, जब एक कुटुम्ब के स्वार्थ दूसरे कुटुम्ब के स्वार्थों के विपरीत होते हैं, और तब एक कुटुम्ब के सब मनुष्यों से दूसरे कुटुम्ब के सब मनुष्यों का ख़ूब विवाद और फ़िसाद होता है।

अब हम तीसरे वृत्त पर आते हैं। ये पशु-मनुष्य हैं अर्थात् मनुष्यों के रूपों में पशु। यह तीसरा वृत्त जो चक्राकार में (ग) **पशु-मनुष्य।** केन्द्र करके दिखाया गया है, जो पहले दोनों वृत्तों में बड़ा है। इसकी तुलना मौसमी हवाओं या (monsoons) या व्यापारी हवाओं (Trade winds) के वृत्त से की जा सकती है। यह उन लोगों की दशा दर्शाता है, जिन्होंने अपनी अभेदता ऐसी वस्तु से कर ली है, कि जो इस तुच्छ शरीर अथवा कौटुम्बिक वृत्त से ऊँची या विशाल है। ये लोग अपने वर्ग या सम्प्रदाय अथवा राज्य से अपनी अभेदता कर लेते हैं। ये लोग साम्प्रदायिक हैं, और अपनी किसी जाति या बिरादरी से अभेदता कर लेते हैं। ये बड़े अच्छे हैं, सचमुच बड़े उपयोगी हैं, वनस्पति-मनुष्यों से कहीं अधिक काम के हैं। इनका केन्द्र इस परिच्छिन्न शरीर से परे है। वनस्पति-मनुष्य के केन्द्र की अपेक्षा यह बहुत ऊँचाई पर और विस्तार लिये हुए है। इनके चक्कर के व्यासार्द्ध (radius) की लम्बाई ज़्यादा है। ये लोग धन्य हैं। आप जानते हैं कि इनकी उपयोगिता अनेक कुटुम्बों और व्यक्तियों तक फैलती है। इनकी भुजायें

जिन लोगो का प्रेमालिगन करती हैं, उनके लिये ये मनुष्य उपयोगी हैं। जिन लोगो के प्रति इनका झुकाव है, उनके लिये ये लाभदायक हैं। ये लोग केवल अपने नन्हे से शरीर अथवा एक परिवार या घर का ही हित नहीं साधते, किंतु उस समस्त वर्ग या सम्प्रदाय का हित भी साधते हैं, जिनसे इन्होंने अपनी अभेदता कर ली है। ये बड़े ही उपयोगी हैं। क्या ये भी स्वार्थी हैं ? क्यो नही, अवश्य है। ये भी स्वार्थपरायण हैं। ये अन्य सम्प्रदायो या जातियो की हानि करके अपने से अभिन्न जाति या सम्प्रदाय की भलाई का प्रयत्न करते हैं। यदि आप इन लोगो की त्रुटियाँ जानना चाहते हैं, तो आपको केवल इनके वृत्त से बाहर के सब बिन्दुओं के प्रति इनके भाव पर दृष्टि डालनी होगी। इनके वृत्त से बाहर जो कुछ है, उसकी ओर ये पीठ फेर देते हैं। जब इनकी साम्प्रदायिकता घनीभूत (दृढ) और अचल हो जाती है, तो भिन्न मतावलम्बियों को धिक्कारते हैं, अर्थात् बुरा-भला कहने से नहीं चूकते। यहाँ एक जाति है, और वहाँ दूसरी जाति है। अर्थात् इसी प्रकार का दूसरा वृत्त है। इन दोनो के एक दूसरे के प्रतिकूल हो जाने पर एक जाति के सब व्यक्तियो से दूसरी जाति के सब व्यक्तियो का लड़ना-मरना शुरू हो जाता है। समझ रखिये, यदि वे कुछ की भलाई करते हैं, तो दूसरी जातियो या समाजो और विरोधी सम्प्रदायो से युद्ध छेड कर यदि अधिक नही तो उतनी ही हानि अवश्य करते हैं। एक समग्र सम्प्रदाय का दूसरी ओर के सम्पूर्ण सम्प्रदाय से लड़ना-झगड़ना बना रहता है। इससे कितना असन्तोष उत्पन्न होता है। फिर भी ये लोग वनस्पति-कोटि के लोगो से कही अधिक वाञ्छनीय हैं।

प्रकृति का नियम है कि तुम्हें एक स्थिति मे स्थिर नहीं रहना चाहिए, बल्कि बढ़े चलना चाहिए, और आगे-आगे बढ़ते ही जाना चाहिए। परिवर्तन और उन्नति के विपरीत जडता के अधीन मत हो। जब लोग खनिज-मनुष्य की अवस्था में है, तो दूसरी उच्चतर अवस्था वनस्पति-मनुष्य की होगी। और इसके बाद की उच्चतर अवस्था पशु-मानव की होगी। यदि ऊपर की ओर चढ़ता और आगे बढ़ता हुआ मनुष्य पशु-मानव की अवस्था से होकर निकलता है, तो यह अच्छा ही है। मनुष्य के लिये पशु-कोटि की अवस्था मे होकर गुज़रने मे कोई भी हानि या क्षति नही है, यह सर्वथा ठीक है। उसी समय सब बातें बिगडती हैं, हरएक चीज़ अस्त-व्यस्त हो जातो है और हानि पैदा करती है, जब किसी मत या सम्प्रदाय के हाथ अपनी स्वाधीनता बेच कर, हम एक स्थान पर रुक कर, अचल होजाने की इच्छा करते, तथा और आगे बढ़ना अस्वीकार करते हैं। एक न एक समय उस अवस्था में होकर गुज़रना सबके लिये स्वाभाविक है। किन्तु उसमें चिपके रहना और उसे चिरस्थायी बनाने की चेष्टा करना मनुष्य के लिए अनुचित है। उसका किसी नाम विशेष का दास बन जाना, अथवा अपनी स्थिति को स्थिरता प्रदान करना ही अनुचित और हानि का कारण है। जब सोडोम (Sodom) और गोमोरा (Gomora) नगर नष्ट किये जा रहे थे, लूत (Lot) की स्त्री लौट पड़ी थी। वह नगर छोड़ रही थी, परंतु उसने पीछे मुँह मोड़ लिया। वह नगर में रहना चाहती थी, उसका चित्त वहाँ लगा हुआ था और उसने फिर लौटना चाहा। फल यह हुआ कि वह जहाँ को तहाँ लवण का स्तम्भ हो गई। ठीक यही दशा उन लोगों की है जो ऊपर की ओर उन्नति कर रहे हैं, और जो अपनी पहली अवस्था से आगे चल रहे हैं, तथा जो आगे बढ़ना अस्वीकार नहीं करते हैं। उनके लिए यह अच्छा है;

किन्तु ज्योंही वे पीछे लौटना चाहते हैं, एवं आगे बढ़ना अस्वीकार करते हैं, अपने आप को नामों तथा रूपों के हाथ बेच डालते हैं, उसी क्षण वे अपने को लवण के स्तम्भ मे बदल लेते है। ऐसी स्थिरता या धर्मान्धता क्लेश का कारण होती है। ये पशु-मनुष्य अच्छे मनुष्य भले ही हों, परन्तु उन्नति करना आवश्यक है, आगे बढ़ चलना चाहिए।

अब हम चौथे वृत्त पर आते हैं जो चित्र में (घ) केन्द्र से दर्शाया गया है। यह मनुष्य रूप मे मनुष्य है। यह साधारण मनुष्य है।

देशभक्त मनुष्य। इसके वृत्त की तुलना चन्द्र के वृत्त से की जा सकती है। चन्द्रमा पृथ्वी के गिर्द एक वृत्त बनाता है। इसकी आकृति वृत्ताकार की अपेक्षा अण्डाकार अधिक है। यह चन्द्र-मनुष्य कौन है? इसका मार्ग बहुत बड़ा है। यह कदाचित् सुखी है। यह वह मनुष्य है जो सम्पूर्ण राष्ट्र या जाति मे अपनी अभेदता कर लेता है। आप उसे देशभक्त कह सकते है। उसका वृत्त बहुत ही बड़ा है। जिनकी सेवा मे वह लगता है, वे किस सम्प्रदाय वाले है, इसकी उसे परवाह नहीं होती। जात-पॉत, वर्ण, नाम और संज्ञा का ध्यान छोड़कर वह अपने देश के समस्त निवासियो का पक्ष पुष्ट करना ही अपना कर्त्तव्य समझता है। वह अति धन्य है, अथवा हार्दिक स्वागत के योग्य है, वह बड़ा ही भला है। वह मनुष्य तो है, किंतु इससे अधिक नहीं। आप जानते है कि चन्द्रमा समुद्र मे क्षोभ उत्पन्न करता है, अर्थात् ज्वार और भाटा पैदा करता है। इसके अतिरिक्त आप जानते हैं कि पागल भी चन्द्रमा से प्रभावित (Moonstricken) कहे जाते है। निस्सन्देह, चन्द्र-वृत्त एक अच्छा वृत्त है। परन्तु विचार कीजिये, जब चन्द्र-मनुष्य अपनी स्थिति अचल बना लेते हैं, जब ये लोग ऐसे स्वार्थपरायण हो जाते हैं कि इनकी स्वार्थपरता मे परिच्छिन्नता आ जाती है (इनकी स्वार्थपरता

का अर्थ है देशभक्ति), जब यह भक्ति कठोर बना दी जाती है, जब इस में परिच्छिन्नता आ जाती है, तब इसका क्या फल होता है ? यह राज्य-परिवर्तन और पागलपन पैदा करती है। यह एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र का विरोधी बनाती है, और तब संग्राम तथा खूनख्राबी होती है। हजारों और कभी कभी लाखों प्राणी रक्त बहाते, गिराते और पान करते हुए इस सुन्दर पृथिवी का सुमुख नरमेध से लज्जित तथा रक्त से लाल कर देते हैं। जिन्हें वे प्रेमालिंगन करते हैं, जिनके प्रति वे झुके हुए हैं, उनके लिये तो वे बहुत अच्छे हैं। किन्तु जिनसे पीठ मोड़े हुए, या प्रतिकूल हैं, उनके प्रति उनके भावोंपर ध्यान दीजिये। वाशिंगटन (Washington) अमरीका वालों के लिए तो बहुत अच्छा है, किन्तु उसके विषय जरा अंग्रेज़ों के मन से तो पूछिये। अंग्रेज-देशभक्त जहाँ तक उस देश का सम्बन्ध है, जिसे वे अपना कहते हैं, बहुत अच्छे हैं; किन्तु जिन जातियों का जीवन-रक्त उनकी देशभक्ति चूस रही है; उनकी दृष्टि से उनका विचार कीजिये।

देव मनुष्य।

सब के अन्त में हम पाँचवें वृत्त पर आते हैं। इसका केन्द्र अनन्तता तक पहुँचता है, अथवा या कहिये कि व्यासार्द्ध अनन्त हो जाता है। तब वृत्त का क्या होता है ? जब व्यासार्द्ध अनन्तता की ख़बर लेता है, तब वृत्त सीधी रेखा हो ही जायगा। सब बाँकपन जाता रहेगा। सीधी रेखा सर्वत्र ही समता और बिना पक्षपात के गुज़रती है। न तो यह किसी की ओर झुकी हुई है और न किसी से पीठ फेरे हुए है, अर्थात् न तो किसी के लिए अनुकूल है, न प्रतिकूल। वृत्त सम रेखा अर्थात् सीधी रेखा हो जाता है। सारा टेढ़ापन मिट जाता है। सारी वक्रता दूर हो जाती है। ये देव-मनुष्य हैं, अर्थात् मनुष्य के रूप में देवता या ईश्वर हैं। इनके वृत्त की तुलना सूर्यकृत वृत्त से की जा सकती है। आप जानते हैं कि सूर्य

की गति सीधी रेखा में होती है। उसके वृत्त का व्यासार्द्ध असीम है। सूर्य प्रभा का पुंज है। यह एक ऐसा वृत्त है जिसका केन्द्र सर्वत्र है, और घेरा या परिधि कहीं नहीं। यह देव-वृत्त या ईश्वर-वृत्त है। ये मुक्त पुरुष हैं, अर्थात् सारे कष्ट, भय, शारीरिक कामनाओं और स्वार्थपरता से मुक्त है। ये स्वाधीन मनुष्य हैं। क्या सीधी रेखा में हम कोई स्वार्थपरायणता नहीं पाते हैं? सीधी रेखा सीधी रेखा है, अर्थात् उसमें कहीं पर भी कोई झुकने वाला स्थान या अधीन करने वाला विषय-बिन्दु हम नहीं देखते। यह आकाश से होकर गुज़रती है, कोई स्वार्थी छोटा केन्द्र ऐसा नहीं है जिसका यह चक्कर काटे, कोई भी चीज़ इसे घुमानेवाली नहीं है। यहाँ स्वार्थपरता का विनाश हो जाता है, अथवा आप कह सकते हैं कि यहाँ वास्तविक आत्मा की उपलब्धि होती है। आप देखते हैं कि हमने बिन्दु-वृत्त अर्थात् स्थूल स्वार्थपरता से प्रारम्भ किया था और अब उस छोटे से बिन्दु ने बढ़, फैल और विकसित होकर सीधी रेखा का रूप धारण किया है। ये देव-मनुष्य हैं। ये वे लोग हैं जिनका घर यह विशाल विश्व है, जात-पाँत, वर्ण, मत, समाज या देश जिनके लिए एक समान है। चाहे आप अंग्रेज़ हों या अमेरिकन, बौद्ध हों या मुसलमान, अथवा हिन्दू हों या कोई भी हों, आप राम की आत्मा हैं। आप उसकी आत्मा की भी आत्मा हैं। यहाँ (शुद्ध) स्वार्थपरता की अद्‌भुत वृद्धि हो गई है, यह एक विचित्र प्रकार की स्वार्थपरायणता है। विशाल संसार में स्वयं हूँ। विश्व इस मनुष्य की आत्मा है। विशाल जगत्, छोटे से छोटा प्राणी, खनिज वनस्पति इत्यादि इन सब की आत्मा इस मनुष्य की आत्मा हो जाती है।

इस पूर्ण मुक्तावस्था को पहुँचे हुए महात्मा के पास एक शिष्य आया और लगभग एक वर्ष भर उसकी सेवा में रहा। शिष्य जब गुरु से बिदा होने लगा, तो भारतीय रीति के अनुसार वह झुक कर

चरण छूने तथा साष्टांग दण्डवत् करने लगा। गुरु ने मुस्कराते हुए उसे उठाया और कहा, "प्यारे! तुम्हारी शिक्षा अभी पूर्ण नहीं हुई। अभी तुममें बड़ी कमी है। कुछ काल तक और ठहरो।" कुछ दिन गुरुदेव के पवित्र सत्संग में वह और रहा, और अधिकाधिक अनुभव-ज्ञान प्राप्त करता रहा। उसकी वृत्ति आत्माकार हो गई। वह शुद्ध आत्मस्वरूप हो गया। वह गुरु के पास से चला गया, उसे यह भी ध्यान नहीं रहा कि वह चेला है या स्वयं गुरु। समग्र संसार, विशाल विश्व को अपनी वास्तविक आत्मा समझता हुआ वह चल दिया। और समग्र संसार जब उसकी वास्तविक आत्मा हो गया, तो वह आत्मस्वरूप कहाँ जा सकता था? जब आत्मा प्रत्येक अणु और परमाणु में व्याप्त है, प्रत्येक अणु और परमाणु को परिपूर्ण किये है, तो वह कहाँ जा सकता है? ऐसे पुरुष के लिए जाने और आने की बात निरर्थक हो जाती है। आप एक स्थान से दूसरे स्थान को तभी जा सकते हैं, जब जिस स्थान को आप जाना चाहते हो वहाँ पहले ही से न हो। अब वह अपने को अर्थात् अपने शुद्ध आत्मा को; वा अन्तरात्मा को, अथवा सर्वव्यापी परमात्मा को पा चुका था, तो आने-जाने का विचार उसे कैसे हो सकता था? जाने और आने के विचार उसके लिए लोप हो गये। वह आत्मानुभव की अवस्था में था। शरीर का जाना एक प्रकार की स्वतः क्रिया थी। वह स्वरूप में स्थित था, उसके लिए जाना या आना कैसा? तब गुरु जी संतुष्ट हुए। इस प्रकार गुरु जी ने उसे जाँचा और ठीक खरा पाया। शिष्य ने गुरु को धन्यवाद नहीं दिया और न प्रणाम किया। इस दर्जे तक वह एकता में लीन हो गया कि धन्यवाद की भावना भी बहुत पीछे छूट गई। तब गुरु ने जाना कि उसने मेरे उपदेशों का ठीक ठीक मर्म समझा है। यह पूर्णावस्था है, जिसमें यदि आप उसका आदर

करते हैं, तो वह कहता है कि तुम मेरा निरादर कर रहे हो। "मैं इस शरीर में परिच्छिन्न नहीं हूँ, मैं यह छोटा सा शरीर मात्र नहीं हूँ, मैं विशाल विश्व हूँ, मैं तुम हूँ, और अपने ही में मेरा सन्मान करो।" यह उस मनुष्य की अवस्था है जो कोई वस्तु तुम्हारे हाथ बेचता नहीं है। यह उस मनुष्य की दशा है, जिसके लिए शरीर का मान और अपमान निरर्थक हैं, यश और अपयश कुछ भी नहीं हैं।

भारत में एक साधु के पास एक मनुष्य, जो युवराज था, आया और साष्टांग दण्डवत् की। साधु ने युवराज से इस दण्डवत्-प्रणाम का कारण पूछा। युवराज ने कहा, "महाराज! पूज्य महात्मा जी! आप साधु हैं और आप ने तो उस राज्य को त्याग कर, जिसके आप पहले शासक थे, यह आश्रम ग्रहण किया है। आप बड़े त्यागी महानुभाव हैं, इसलिए मैं आप को ईश्वरवत् समझता हूँ और आप की उपासना करता हूँ।" आप जानते हैं, भारत में मनुष्यों का अधिक आदर धन के कारण नहीं होता है। भारत में लोगों का आदर उनकी त्यागावस्था के अनुसार होता है और वहाँ (भारत में) मान का प्रधान कारण यहाँ (अमरीका) से भिन्न है। सर्वशक्तिमान् लक्ष्मी (रुपये) की अपेक्षा परमात्मा पर अधिक भरोसा किया जाता है। युवराज त्यागी पुरुष का सत्कार कर रहा था। साधु ने युवराज को उत्तर दिया, "यदि इसी कारण से तुम मुझे प्रणाम कर रहे हो, तो मुझे तुम्हारे चरण धोना चाहिए, मुझे तुम्हारे आगे झुक कर प्रणाम करना चाहिए क्योंकि ऐ युवराज! इस संसार के सब साधुओं के त्याग से तुम्हारा त्याग अधिक है।" यह बड़ी ही विचित्र बात है। ऐसा कैसे हो सकता है? तब साधु ने समझाना शुरू किया "कल्पना करो कि एक मनुष्य एक विशाल भवन का स्वामी है और उसका कूड़ा करकट वह बाहर फेंक देता है। वह घर का केवल गर्द-गुबार त्यागता या बाहर

फेंकता है। क्या वह त्यागी है?" युवराज ने कहा, "नहीं, कदापि नहीं, वह त्यागी नहीं है।" इसके बाद साधु ने कहा, "दूसरा आदमी घर का कूड़ा-करकट तो जमा करता है और सारा मकान, विशाल भवन त्याग देता है। इस मनुष्य को तुम क्या समझोगे?" युवराज ने कहा, "वह जो केवल कूड़ा-करकट संचय करता है और भवन त्याग देता है, त्यागी मनुष्य है।" इस पर साधु ने कहा, "भाई युवराज! तब तो तुम्हीं त्यागी हो, क्योंकि वास्तविक आत्मा अर्थात् परमेश्वर को, जो विशाल भवन है, जो निज धाम है, जो बैकुण्ठ है, बल्कि जो स्वर्गों का भी स्वर्ग है, तुमने त्याग दिया है, और केवल उसका कूड़ा-करकट, यह शरीर, यह तुच्छ स्वार्थपरायणता तुमने रख छोड़ी है। मैंने कुछ भी नहीं त्यागा है। मैं स्वयं ईश्वरों का ईश्वर हूँ, अर्थात् संसार का स्वामी हूँ।"

कभी कभी इन लोगों को अर्थात् इन सिद्ध पुरुषों को जो उन्नति की परम अवस्था में पहुँच गये हैं, कुछ लोग तुच्छ तथा अपमानित समझते और सनकी कहते हैं। किन्तु जरा इनसे पूछिये तो सही कि भला एक क्षण के लिए भी ये अपना निजानन्द अथवा परम सुख जो इन्हें ब्रह्ममयी अवस्था से प्राप्त होता है, संसार की समस्त सम्पत्ति और वैभव से बदलने को तैयार हैं? कदापि नहीं, कदापि नहीं। विषय-सुखों के द्वार पर, अर्थात् रक्त-मांस की देह के द्वार पर जा जा कर हाथ फैलाने वाले नाममात्र सम्पत्तिशाली पुरुषों के भिखारीपन को ये महात्मा तुच्छ समझते और करुणा की दृष्टि से देखते हैं। आनन्द आपके भीतर है। तो फिर शोचनीय और पीड़ित अवस्था में इधर उधर भटक कर भिखारी का स्वाँग धर, क्षुद्र कण का सा बर्ताव क्यों करते हो? आओ, अपनी पवित्रात्मा अर्थात् सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का अनुभव करो, और पूर्णानन्द में लीन अवस्था से निम्नलिखित गीत बहने दो।

"I am the mote in Sunbeam, and I am the burning Sun,
Rest here!" I whisper the atom. I call to the orb, "Roll on,,
I am the blush of the morning, and am the evening breeze,
I am the leaf's low murmurs, the swell of the terrible seas;
The lover's passionate pleading, the maiden's whispered fear;
The warrior, the blade that strikes him, his mother's heart wrung far,
The rose her poet nightingale, the songs from the throat that rise,
The flint, the sparks, the taper, the moth that about it flies.
I am intoxication, grapes, wine-press and musk and wine,

The guest, the host, the traveller, the goblet of crystal fine"

मैं कण हूँ रवि की किरणों में, भानु प्रज्वलित भी मैं हूँ।
'ठहरो' ऐसा अणु-के कान में मैं धीमे से कहता हूँ,
'चले चलो' ऐसी आज्ञा मैं भूमण्डल को देता हूँ।
मैं ऊषा की लाली हूँ और साँझ समय की मन्द समीर।
मन्द ध्वनि हूँ पत्ती की और क्षोभ हूँ भीष्म सागर का।
प्रेमी की मैं प्रबल विनय हूँ, युवती की कोमल भय बानी।
योधा मैं हूँ और शस्त्र धारा जो उसे हनन करे है वह भी मैं हूँ।

और उसकी माता का हृदय विदारण भय भी मैं हूँ।
पुष्प गुलाब हूँ, कवि बुलबुल हूँ और गले से उठने गीत।
चकमक पत्थर, चिङ्गारी हूँ और दीपक की हूँ लौ।
पतङ्ग हूँ, जो घूमे है उसके चारों ओर।
नशा हूँ, अंगूर, मुश्क, मद्य और भभका मैं हूँ।
अतिथि, यजमान, यात्री और शुद्ध स्फटिक का प्याला मैं हूँ।

Oh ! The splendour and glory of yourself makes the pomp of kings ridiculous.
Such a wonderous Heaven you are, Existence, knowledge and Bliss you are.

Om ! Om ! ! Om ! ! !

अरे ! तुम्हारे आत्मा की विभूति और महिमा इन राजाओं के आडम्बर को लज्जित और हास्यास्पद करती है।

ऐसा विचित्र बैकुंठ तुम हो और सच्चिदानन्द तुम हो।

ओ३म् ! ओ३म् !! ओ३म् !!!

सान्त में अनन्त ।

—:o:—

[ता० १० जनवरी १९०३ को अमेरिका के सैनफ्रासिस्को के गोल्डन गेट हाल मे दिया हुआ व्याख्यान !]

—:o:—

महिलाओं और सज्जनो के रूप मे एक अनन्त स्वरूप !

विषय पर आने के पूर्व संसार जिस प्रकार के श्रोता साधारणत: जुटा दिया करता है, उस पर कुछ शब्द कहना आवश्यक है।

लोग साधारणत: अपने कानो से नहीं सुना करते, दूसरों के कानों से सुनते हैं। वे अपनी आँखों से नही देखते, अपने मित्रों की आँखों से देखते हैं। वे अपनी रुचि से काम नहीं लेते, दूसरों की रुचि से काम लेते हैं, कैसा बेतुकापन है! संसारी मनुष्यों! हर मौक़े पर अपने कानों और अपने नेत्रों से काम लो। हर अवसर पर अपनी ही समझ को काम मे लाओ। तुम्हारी अपनी आँखें और कान बेमतलब नहीं हैं, वे व्यवहार के लिए हैं।

राम एक दिन सडक पर जा रहा था। एक भलेमानुस ने आकर कहा, "यह पोशाक तुम किस अभिप्राय से पहनते हो? ऐसी पोशाक तुम क्यों पहनते हो? इससे तुम हमारा ध्यान क्यों खींचते हो?" राम सदा मुस्कराता और हँसता है। यदि भारतीय साधुओं के पहनावे से आप प्रसन्न होते है, तो राम को आप की प्रसन्नता से आनन्द है। यदि यह पोशाक आपके हर्ष और हास्य का कारण होती है, तो हमें आप की मुस्कराहटों से सुख प्राप्त होता है। आप का मुस्कराना हमारा मुस्कराना है।

किन्तु, कृपया समझदार बनिये। समाचार-पत्रों ने यदि किसी की प्रशंसा या विरोध मे एक शब्द लिख दिया, तो सारे समाज के विचार वैसे ही होने लग जाते है। लोग कहने लगते है, समाचार-पत्र ऐसा कहते है, समाचार-पत्र वैसा कहते है। समाचार-पत्रों की तह मे क्या है? साधारणत: लड़के और नारियाँ समाचार-पत्रों के संवाद-दाता होते है। सब समाचार चौथी और कभी कभी दसवी श्रेणी के संवाददाताओं से मिलते है, न कि विद्वान् विचारकों से। यदि एक मनुष्य, नगर-नायक, किसी की प्रशंसा करने लगता है, यदि एक ऐसा मनुष्य जो बड़ा आदमी समझा जाता है, किसी आदमी का आदर करने लगता है, तो सबके सब उसी एक मनुष्य की ध्वनि को दोहराने और प्रतिध्वनित करने लगते है। यह स्वतंत्रता नहीं है। स्वाधीनता और स्वतंत्रता का अर्थ है हर मौके पर अपने कानों को काम मे लाना, हर मौके पर अपनी आँखों का उपयोग करना।

जिस मनुष्य ने यह पोशाक पहनने का कारण पूछा था, उससे राम ने कहा "प्यारे, भाई, यह तो बताओ कि इस रंग के कपड़े क्यों न पहनना चाहिए? और किसी दूसरे रंग के क्यों पहनना चाहिए? राम इसके स्थान मे काला अथवा सफेद रंग क्यों पहने? कृपया कारण बताइये। कोई बुराई बताइये। आप क्या दोष पाते है?" वह कोई दोष न बता सका। उसने कहा, "यह रंग भी उतना ही सुखद है, जितना मेरा। तुम्हारा यह कपड़ा भी सर्दी और गर्मी मे तुम्हारी रक्षा वैसा ही करता है जैसी कि मेरा। यह रंग भी उतना ही अच्छा है जितना कि कोई दूसरा, और चाहे जौन सा कपड़ा पहना जाय, वह किसी न किसी रंग का तो होगा ही। यदि वह काला है, तो रंग रखता है, यदि सफेद है, तो रंगवाला है, और यदि गुलाबी

हैं, तो भी रंगवाला है। कोई न कोई रंग का तो वह अवश्य होगा। किसी न किसी रंग का होने से वह बच नहीं सकता।"

अब आप बतावें कि, इस रंग में आप क्या ऐब समझते हैं। वह कोई दोष न बता सका। तब राम ने उससे कहा, "आप अपने ऊपर कृपा कीजिये; अपनी आँख पर कृपा कीजिये; अपने कानों पर कृपा कीजिये; अपने नेत्रों और कानों से काम लीजिये; तब निर्णय कीजिये, दूसरों की सम्मतियों के द्वारा फैसला मत कीजिये। दूसरों की मतियों से मोहित मत हूजिये, अथवा दूसरों के मतों के चेरे मत बनिये। दूसरों के चेरे होने की कमज़ोरी से मनुष्य जितना अधिक बचा हुआ है, उतना ही अधिक वह स्वाधीन है।"

राम की इच्छा है कि इन व्याख्यानों को सुनने में आप अपने ही कानों और बुद्धियों से काम लें। आपही नतीजा निकालें। **यदि ठीक तरह पर आप इन व्याख्यानों को सुनेंगे तो, राम वचन देता है, कि आप को इनसे विशेष लाभ होगा। आप सब चिन्ता, भय और क्लेशों से परे हो जायँगे।**

आप जानते हैं, लोग कहते हैं कि वे धन चाहते हैं। भला बताइये ! आप धन किस लिए चाहते हैं ? आप आनन्द के लिए धन चाहते हैं, किसी और के लिए नहीं। और धन से आनन्द मिलता नहीं। अब मैं उस वस्तु को बतलाता हूँ जिससे आप को आनन्द मिलेगा। कुछ कहते हैं, हम ऐसे व्याख्यान सुनना चाहते हैं, जो मर्मस्पर्शी हों, जो हमारे दिलों में गड जायँ; अर्थात् हम ऐसे व्याख्यान चाहते हैं, जो प्रत्यक्ष और तुरन्त प्रभाव पैदा करने वाले हों। बच्चे मत बनिये। बच्चे को एक सोने की मुद्रा और एक मिसरी का टुकडा दिखाइये। बच्चा तुरन्त मिसरी का टुकडा ले लेगा, जो तुरन्त मिठास का प्रभाव पैदा करता है। वह सोने या चाँदी की मुद्रा न लेगा। बच्चे मत बनिये।

कभी कभी व्याख्यानों और वक्तृताओं का तुरन्त प्रभाव पड़ता है। किन्तु वे केवल मिसरी-वत् होते हैं, उनमें स्थिर और स्थायी कुछ भी नहीं है। अब आप एक ऐसी बात सुनिये जो आप पर अत्यन्त स्थिर और स्थायी प्रभाव डालेगी। विश्व-विद्यालयों और महाविद्यालयों में, लोग घंटों लगातार शिक्षकों और अध्यापकों के उपदेश सुनते हैं। अध्यापक किसी प्रकार की वक्तृत्व-शक्ति नहीं प्रकट करते और न अलङ्कार शास्त्र के नियमों का ही पालन करते हैं। अध्यापक साधारणतः अपने विद्यार्थियों को धीरे धीरे, शान्त भाव में, अटकते हुए उपदेश देते हैं। किन्तु, अध्यापक में तुरन्त प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति हो या न हो, विद्यार्थियों को उसके मुख से निकले हुए प्रत्येक शब्द को ग्रहण करना पड़ता है।

ऐसे ही राम आज संसार को उपदेश देता है। संसार को उसके शब्द उसी भाव में सुनने चाहिये, जिस भाव से महाविद्यालय के विद्यार्थी अपने अध्यापकों की बातें सुनते हैं। आप चाहे कहें कि ये शब्द अभि-मानभरे हैं, किन्तु हाँ वह समय आ रहा है जब . .... *

आज के विचार का विषय है सान्त में अनन्त अर्थात् परिच्छिन्न में अपरिच्छिन्न। तत्त्व शास्त्र और ज्ञान को लोकप्रिय बनाना बड़ी ही कठिन बात है। किन्तु **सुकरात** कहता है, और उसका कथन बिलकुल ठीक है, कि "ज्ञान ही धर्म या बल है।" यही भाव अन्त में मानव जाति पर शासन करेगा। ज्ञान ही मानव जाति पर शासन करता है,

* यहाँ पर राम बिलकुल मौन होकर इस विचार में डूब गये कि एक दिन यह समस्त संसार आध्यात्मिक जीवन के सोते से जी भर कर अमृत पीने को बाध्य होगा, और जो ध्येय वे बता रहे थे वही मनुष्य मात्र का लक्ष्य होगा।

ज्ञान ही कार्य मे परिवर्तित होता है। लोग पहले से बना-बनाया काम चाहते है, परन्तु पहले से बना-बनाया काम स्थायी नही होता। **राम तुम्हें ऐसा ज्ञान दे रहा है, जो तुम्हें कर्म की अनन्त शक्ति में बदल देगा।** इसे लोकप्रिय बनाना कठिन है। इस कठिन और गूढ़ समस्या को यथासम्भव सरल बनाने का हम भरसक उद्योग करेंगे।

इस संसार की जो अति छोटी चीज़ तुम्हारी धारणा मे आ सकती है, जो छोटी से छोटी वस्तु आप इस संसार मे प्राय: देखते है, उसीसे हम आरम्भ करेंगे। पोस्त का बीज कह लीजिये, अथवा सरसो का बीज मान लीजिये, अथवा कोई छोटा बीज जो आपके मन मे आवे, उस अत्यन्त छोटे बीज को अपने सामने हथेली पर रखिये। यह बीज क्या है? जिसे आप अपने सामने देख रहे है, अथवा सूँघ रहे है, या तौलते है, या जिसे आप छू सकते है, क्या यही बीज है? क्या वह नन्ही सी चीज़ बीज है? अथवा बीज कोई दूसरी ही चीज़ है? आओ, परीक्षा करें।

इस बीज को ज़मीन मे बो दो। बहुत ही थोड़े समय में बीज अंकुरित होकर सुन्दर, कल्ले निकालता हुआ पौधा हो जाता है, और उस पहले मूल-बीज से हमे फिर यथासमय हज़ारो बीज मिलते है। इन दूसरे हज़ारो बीजो को बो दीजिये और उसी तरह के लाखो बीज हमारे हाथ लगते है। इन लाखो बीजो को बो दीजिये, उसी तरह के करोडो बीज हम पा जायँगे। इस चमत्कार से क्या स्पष्ट होता है? मूल-बीज, पहला बीज, जिससे हमने शुरू किया था, वह अब कहाँ है?

वह भूमि मे नष्ट हो गया, पृथिवी मे मर गया। वह अब कहीं देखने को नहीं आता। किन्तु उस मूल बीज से आज हमे उसी तरह के करोड़ो और अरबो बीज प्राप्त है। ओह! उस प्रारम्भिक मूल-बीज

में, जिससे हमने श्रीगणेश किया था, कैसी अनन्त शक्ति, सामर्थ्य, और अनन्त योग्यता गुप्त या सुप्त थी।

अब फिर प्रश्न होता है। यह एक बीज है, यह पोस्त या सरसों का छोटा सा बीज है, इस कथन मे आपका अभिप्राय क्या है? इस वाक्य मे आपका मतलब क्या है? क्या आपके विचार में बीज शब्द का अर्थ केवल उसकी आकृति, परिमाण, तौल और गन्ध है? क्या बीज-रूप से अभिप्राय वास्तव में रूपों का केवल बाह्य केन्द्र है, नहीं, नहीं। हम एक ऐसा नकली बीज बना सकते है, कि जिसका न केवल तौल, रङ्ग और गन्ध किन्तु स्वाद भी ऐसा हो जैसा कि असली बीज का। परन्तु यह बनावटी बीज वास्तव मे बीज नहीं कहा जा सकता, यह असली सच्चा बीज नहीं कहा जा सकता, यह केवल एक रूप होगा, लड़कों के खेलने का खिलौना होगा, न कि बीज। इस प्रकार हम देखते है कि बीज शब्द का एक वाच्य या बाह्य अर्थ है, और एक लक्ष्य या असली अर्थ भी। बीज शब्द का बाह्य अर्थ है, रूप, परिमाण, तौल या ऐसे गुण जिनको हम अपनी इन्द्रियों से जान सकते है। किन्तु बीज शब्द का असली अर्थ है, अनन्त शक्ति, अनन्त सामर्थ्य, अनन्त संभाव्यता, जो बीज रूप मे छिपी हुई है। यहाँ हम सान्त में अनन्त देखते हैं। सान्त रूप या आकृति मे जो अपार सामर्थ्य या अनन्त शक्ति छिपी हुई है, और जो बीज शब्द का असली अर्थ है, वह बीज का भीतरी अनन्त है, न कि उसका बाह्य या बाहरी रूप।

अब बतलाइये कि इस रूप या आकृति की मृत्यु के साथ साथ क्या उस अनन्त शक्ति का नाश हो जाता है? बीज का रूप मृत्यु को प्राप्त होता है, बीज का रूप या बाह्य बीज पृथ्वी में नष्ट होजाता है, किंतु क्या असली बीज अर्थात् भीतरी अनन्त भी नाश को प्राप्त होता है।

नहीं, नहीं, बिल्कुल नहीं। अनन्तता की मृत्यु कैसे हो सकती है ? उसका नाश कभी नहीं होता। आज हम वह बीज लेते हैं, जो, मान लीजिये प्रारम्भिक बीज की हज़ारवीं सन्तति है। इस बीज को हम उठाते हैं। फिर बोइये, इसे फिर भूमि में रोपिये। आप देखेंगे कि इसमें भी वृद्धि वा विकास की वही अनन्त शक्ति मौजूद है, जो प्रथम बीज में थी। मूल बीज की करोड़वीं सन्तति में भी वही अनन्त सामर्थ्य और शक्ति वर्तमान है, जो मूल बीज में थी।

बस, हम देखते हैं कि बीज शब्द का वास्तविक अर्थ, जो भीतरी अनन्तता है, वह प्रथम बीज की भी वही है जो प्रथम बीज की हज़ारवीं सन्तति की है। और यह अनन्तता प्रथम बीज की पन्द्रहवीं पीढ़ी में भी समान बनी रहेगी। इससे हमें पता चलता है कि भीतरी अनन्तता, अथवा अनन्त शक्ति या सामर्थ्य निर्व्यय और निर्विकार है, और हम यह भी देखते हैं कि वास्तविक बीज, अनन्त शक्ति, अनन्त सामर्थ्य का नाश नहीं होता। मूल बीज का रूप नष्ट हुआ, परन्तु शक्ति नहीं नष्ट हुई। शक्ति फिर सहस्रवीं पीढ़ी के बीजों में अपरिवर्तित और बेबदली प्रकट होती है। बीज के भीतर की सच्ची अनन्तता बीज के देह की मृत्यु के साथ अथवा बीज के रूप के नाश के साथ नष्ट नहीं होती। राम कहेगा बीज की मानो यह आत्मा, दूसरे शब्दों में, बीज की वास्तविक अनन्तता नाश को नहीं प्राप्त होती; यह बदलती नहीं; कल, आज, और सदा यह ज्यों की त्यों बनी रहती है। पुनः आज हम जो बीज लेते हैं उनमें भी फैलाव और वृद्धि की अनन्त शक्ति वही है, जो प्रथम बीज में थी। यह बदलती नहीं; यह कल, आज और सदा एकसा रहती है। आज फिर हम जिन बीजों को लेते

है, उनमें भी फैलाव और वृद्धि की वही अनन्त शक्ति वर्तमान है, जो प्रथम बीज में थी। न तो वह ज़रा सी भी बढ़ती है, न घटती है।

हम देखते हैं कि बीज शब्द के असली अर्थ, या हम कहेंगे, कि बीज की आत्मा या जान, न बढ़ती है और न घटती है। सन्क्षेप में, असली बीज कल, आज और सदा एकसाँ है। वह अनन्त है। बीज के रूप अथवा बीज रूप की देह के नाश के साथ साथ उसका नाश नहीं होता। वह अविनाशी है, निर्विकार है। उसमें कोई कमी या अधिकता नहीं हो सकती। (पुनरुक्ति हो तो राम को आप क्षमा करें; क्योंकि राम समझता है, कभी कभी पुनरुक्ति की आवश्यकता है।)

क्या आप जानते हैं कि छोटे छोटे जन्तु, जिन्हें आप अति सूक्ष्म कीड़े कह सकते हैं, कैसे बढ़ते हैं? कलल+का, जिसे लघुतम या प्रारम्भिक जन्तु भी कभी कभी कहते हैं, आदि विकास कैसे होता है? पदार्थ-विज्ञानियों (नैचुरलिस्ट्स naturalists) की भाषा में छोटे छोटे जन्तुओं की वृद्धि दो समान खण्ड होने से होती है। यह समान खण्डन प्राकृतिक नियम से होता है। हम भी ऐसा कर सकते हैं। इन क्षुद्र जन्तुओं अर्थात् नन्हे नन्हे कीड़ों में से एक ले लीजिये। किसी उत्तम, अति पैनी शलाका (नश्तर) से इसके दो बराबर टुकड़े कर डालिये। इसकी क्या गति होगी? ओह! यह बड़ा निठुर कर्म है। यदि हम किसी मनुष्य को दो भागों में काट दें,

---

स्थूल शरीर का आदि रूप, अण्डे के भीतर का सा अर्धतरल सफ़ेद पदार्थ जिसे अंग्रेज़ी में प्रोटोप्लैज्म (Protoplasm) या प्रोटोजोआ (Protozoa) कहते हैं।

यदि हम उसके शरीर में कटार भोंक कर दो टुकड़े कर डालें, तो वह मर जायगा। इसी तरह अगर हम इस क्षुद्र जन्तु के दो टुकड़े करेंगे तो मर जायगा। किन्तु क्षुद्र जन्तु को काट डालिये, वह मरता नहीं, दो हो जाता है। कैसी अत्यन्त अद्भुत लीला है! उसके दो टुकड़े कर डालिये, और वह दो हो जाता है, दोनो एक समान। अब इन दोनो को लीजिये और काट डालिये। फिर हरएक के दो दो समान टुकड़े करिये और उनके मरने के बदले आपको चार जीते जन्तु उसी शक्ति और बल के प्राप्त होंगे, जैसे कि मूल जन्तु। आपको चार जीते जन्तु मिलेंगे। इन चारों के दो दो बराबर के टुकड़े कर डालिये और चार को मारने के बदले आप उन्हें बढ़ाकर आठ बना देंगे। इसी प्रकार, जहाँ तक आप की इच्छा हो बढ़ाते चले जाइये। आप उनकी संख्या यथेच्छा बढ़ा सकते हे। कैसा आश्चर्य है!

वह देखिये, आपके सामने एक जन्तु का रूप या जन्तु का शरीर है। मै जन्तु शब्द का वाच्य या बाह्य अर्थ व्यवहार मे ला रहा हूँ। बाह्य अर्थ केवल शरीर, रूप, परिणाम, तौल, रंग, आकृति है। बाह्य रूप मे जन्तु यही है। किन्तु वास्तविक जन्तु उसकी आन्तरिक शक्ति, अथवा बल, व भीतरी जीवन है। यह है असली जन्तु। बाह्य जन्तुओं को मार डालिये, रूप को नष्ट कर दीजिये, किन्तु वास्तविक जन्तु अथवा आत्मा, आप इसे सार कह सकते हैं, मरता नहीं। वह मरता नहीं, वह ज्यों का त्यों बना रहता है। शरीरो को काटते, शरीरो को नष्ट करते जाइये। शरीर की मृत्यु से वास्तविक आत्मा का नाश नहीं होता, उससे केवल रूप का नाश होता है।

वास्तविक आत्म-देव, जो तुम हो, अमर है। जन्तु का मूल शरीर लाखों गुना बढ़ाया जा सकता है, बढ़ाकर कोटियों गुना किया जा सकता है। और यह है अनन्त शक्ति मूल जन्तु के शरीर मे छिपी हुई। यही है सान्त मे अनन्त; परिच्छिन्न में अपरिच्छिन्न।

अब प्रश्न होता है, जब शरीर गुणित व वर्द्धित होते हैं जब जन्तु के शरीर बढते वा बहु संख्यक होते जाते हैं, तब क्या वह भीतरी अनन्त शक्ति भी बढती जाती है? अथवा वह घटती है? नहीं, वह न तो घटती है न बढती है। जन्तु के बाहरी देखने मात्र सान्त रूप के अन्तर्गत वास्तविक अनन्तता नही बदलती, वह बढती नहीं, वह घटती नहीं, वह वही रहती है।

इस अद्भुत क्रिया (वा दृश्य) की व्याख्या वेदात में एक उदाहरण द्वारा की जाती है।

एक छोटा बच्चा था जिसको दर्पण कभी नहीं दिखाया गया था। आप जानते होंगे, भारत मे अर्थात् हिन्दुस्थान में छोटे बच्चों को दर्पण नहीं दिखाया जाता। यह छोटा बच्चा एक बार घिसल कर अपने पिता के कमरे मे पहुँच गया। वहाँ फर्श पर एक दर्पण था, जिसका एक सिरा तो दिवाल में लगा हुआ था और दूसरा सिरा भूमि पर था। यह छोटा बच्चा शीशे के पास घिसलकर चला गया। अब देखिये! वहाँ उसने एक बच्चा अर्थात् छोटा बच्चा वा प्यारा छोटा बच्चा देखा। आप जानते है, बच्चे सदा बच्चों से आकृष्ट होते हैं। यदि आप के बच्चा हो और उसे साथ अपने मित्र के घर आप ले जाइये तो, जब अपने मित्र मे आप बातचीत करेंगे, बच्चा

तुरन्त उस घर के बच्चों से दोस्ती जोड लेगा। इस बच्चे ने आइने में अपने ही डील डौल का एक बच्चा देखा। वह उसके पास गया। जब वह दर्पण बच्चे के पास खिसक रहा था तब दर्पणी बच्चा भी उसकी ओर बढ़ रहा था। वह ख़ुश हुआ। उसने देखा कि दर्पण वाला बच्चा स्नेह दिखा रहा है, मुझे उतना ही चाहता है, जितना मै उसे चाहता हूँ। उनकी नाकें मिलीं। उसने अपनी नाक शीशे में लगाई और शीशे वाला बच्चा भी अपनी नाक उसकी नाक तक ले गया; दोनों नाकों का स्पर्श हुआ। उनके ओठ मिले। उसने अपने हाथ शीशे पर रक्खे और शीशे वाले बच्चे ने भी अपने हाथ उसके हाथों की ओर बढ़ाये, मानो वह उससे हाथ मिला रहा है। किन्तु इस बच्चे के हाथ जब शीशे वाले हाथों पर थे तब शीशा गिर कर दो टुकड़े हो गया। अब बच्चे ने देखा कि शीशे मे एक के बदले दो बच्चे है। दूसरे कमरे मे बच्चे की माँ ने यह शब्द सुना। वह दौड़ कर अपने पति के कमरे मे आई और देखा कि पति वहाँ नहीं हैं। किन्तु बच्चा कमरे की चीजों की गत बना रहा है और शीशा तोड डाला है। वह इस तरह बिगडती और धमकाती हुई उसके पास गई कि मानो मारेगी। किन्तु आप जानते है, लडके ख़ूब समझते है। वे जानते है कि माताओ की धमकिया, घुडकिया और लाल पीली आँखे निरर्थ होती हैं। वे अनुभव से यह बात जानते है। "तूने क्या किया", "तूने क्या किया", "तू यहाँ क्या कर रहा है", माता के इन वाक्यो से बच्चा डरा नही। उसने इन शब्दो को घुडकी वा धमकी न समझ कर दुलार समझा। उसने कहा, "ऐ! मैने दो कर दिये, दो बना दिये, दो बना दिये"। बच्चे ने एक बच्चे से दो बच्चे बना दिये। मूल मे एक बच्चा था, जो दर्पण वाले एक बच्चे से बात चीत कर रहा था। अब इस बच्चे ने दो बच्चे बना दिये। एक छोटा बच्चा बालिग होने के पहले

ही दो बच्चो का बाप हो गया। उसने कहा, "मैने दो बनाये हैं, मैने दो बना डाले"। माता मुस्कराई और बच्चे को गोदी में लेकर अपने कमरे में चली गई।

दर्पण के ये दोनो खण्ड लीजिये। इन्हे तोडिये, कसर न कीजिये, आप को अधिक दर्पण मिलेगे। इन खण्डो को तोड कर चार खण्ड बनाइये, और आपको चार बच्चे मिलेगे। शीशे के इन चार खण्डो को तोड़ कर आठ बनाने से छोटा बच्चा आठ बच्चो की सृष्टि कर सकता था। इस रीति से मनमानी संख्या मे बच्चो की सृष्टि की जा सकती है। किन्तु हमारा प्रश्न है, क्या वह असली आत्म-देव, क्या वह असली बच्चा शीशो के टूटने से बढ़ता या घटता है? वह न बढता है न घटता है। कमी और ज्यादती केवल शीशो मे होती है। दर्पण मे आप जिस बच्चे को देखते हैं, उसमें कोई अधिकता नहीं होती, वह ज्यो का त्यो बना रहता है। अनन्त कैसे बढ़ सकता है? अनन्तता यदि बढ़ती है, तो वह अनन्तता नहीं है। अनन्तता घट कैसे सकती है? घटती है, तो वह अनन्ता नहीं है।

इसी भाति, जन्तु के दो खण्ड होने की क्रिया की वेदान्त में व्याख्या यह है, कि जब आप अति क्षुद्र कीड़े के दो समान खण्ड करते हैं, तब शरीर अर्थात् वह लघु शरीर, जो ठीक दर्पण के तुल्य है अर्थात् ठीक शीशे के समान है, दो भाग हो जाता है। किन्तु शक्ति अर्थात् भीतरी वास्तविक अनन्तता, या असली जन्तु अथवा सच्ची आत्मा या शक्ति, कोई भी नाम आप इसका रखले, अथवा भीतर का सच्चा परमात्मा, जन्तु के दो भाग होने से विभक्त नहीं होता। जन्तु के शरीरो के गुणन के साथ साथ असली जन्तु की शक्ति, अर्थात् भीतरी आत्म-देव

की वृद्धि नहीं होती। वह ज्यो का त्यो बना रहता है। वह असली बच्चे के समान है, और जन्तु के शरीर दर्पण के टुकडो के सदृश हैं। जब जन्तु के शरीरो के भाग और उपविभाग और पुनः भाग होते है, निर्विकार अनन्त शक्ति अपना प्रतिबिम्ब डालती रहती है, अपने दर्शन देती रहती है, हजारो और करोड़ो शरीरो मे अपने को समान भाव से प्रकट करती है। वह वही बनी रहती है। वह केवल एक, केवल एक, केवल एक है, दो नहीं, बहु नहीं। ओ महा आश्चर्य! कैसा आनन्द है! इस शरीर के दो भाग कर दो, इस शरीर को काट डालो, किन्तु मैं मरने का नही। वास्तविक स्वरूप, वास्तविक "मुझ" सच्ची "मै" मरती नही। इस शरीर को ज़िन्दा जला दो, इसे तुम्हारा जो जी चाहे करो, मुझे कोई हानि नहीं होती। अनुभव करो, अनुभव करो कि तुम भीतरी अनन्तता हो। यह जानो। जिस क्षण कोई मनुष्य अपने को भीतरी अनन्तता जान लेता है, जिस क्षण मनुष्य को अपनी वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है, उसी क्षण वह स्वाधीन हो जाता है; सम्पूर्ण भय, कठिनता, यातना, कष्ट और व्यथा से परे हो जाता है। यह जानो, जो वास्तव मे तुम हो, सो बनो।

ओ! यह कैसा आश्चर्यो का आश्चर्य है कि, वह एक ही अनन्त शक्ति है, जो अपने को सब शरीरो मे, सब देखने मात्र व्यक्तियो मे, अर्थात् सब वाह्य रूपो मे प्रकट करती है। ओह, वही 'मै' है, वह असली 'मै' है, वही एक अनन्त है, जो अपने को बड़े से बड़े वक्ताओं, महापुरुषो और घोर अभागे प्राणियो के शरीरो मे प्रकट कर रहा है। ओह, कैसा आनन्द है! मै अनन्त एक हूँ न कि यह शरीर। इसका अनुभव करो और आप

स्वतंत्र वा स्वाधीन हो। ये केवल शब्द नहीं हैं। यह केवल काल्पनिक बातचीत नहीं है। यह सच्ची से सच्ची असलियत है। सत्यतम वास्तविकता, अर्थात् असली शक्ति को, जो तुम हो, प्राप्त करो। तुम अनन्त अनुभव करते ही सब आशंकाओं और कठिनताओं से तुरन्त दूर हो जाते हो।

मान लो कि यहाँ संसार में सहस्रों शीशे हैं। कोई काला है, कोई सफ़ेद है, कोई लाल है, कोई पीला है, कोई हरा है। एक कूर्मपृष्ठाकार (convex) है, दूसरा पुटाकार (concave) है। मान लो काई पहलदार (prismatic) है और कोई गरारीदार अर्थात् छोटी वस्तु को बड़ी अथवा बड़ी को छोटी दिखाने वाला है। सब तरह के शीशे हैं। एक मनुष्य उन शीशों के नीचे खड़ा हुआ है। वह चारों ओर दृष्टि डालता है। एक जगह वह अपने को लाल देखता है। लाल शीशे में वह अपने को लाल पाता है। दूसरी जगह वह अपने को पीला पाता है, और तीसरी जगह वह अपने को काला पाता है। पुटाकार शीशे में वह अपनी आकृति विचित्र ढंग से विकृत देखता है। कूर्मपृष्ठाकार शीशे में वह फिर अपने को खूब हंसे जाने के योग्य विकृत देखता है। वह अपने को इन भांति भांति के रूपों और आकारों में देखता है। किन्तु इन सब बाह्य विभिन्न रूपों में एक अविभाज्य, निर्विकार, सर्वकालीन, निरन्तर सत्ता है। यह जानो और अपने को मुक्त करो। यह जानो और सब रंज दूर करो। इस सम्पूर्ण विकृति और कुरूपता का उस वास्तविक अनन्तता अर्थात् आत्मदेव से कि, जो इन समस्त विभिन्न शीशों तथा दर्पणों में अपने को प्रकट और आविर्भूत करता है, कोई सम्बन्ध नहीं है। भेद तुम्हारे शरीरों में है। शरीर, मन विभिन्न

शीशों के समान है। एक शरीर गरारीदार शीशे के तुल्य है, दूसरा पहलदार है। कोई सफ़ेद, कोई लाल, कोई पुटाकार और कोई कूर्मपृष्ठाकार शीशे के समान है। शरीर विभिन्न हैं, किन्तु तुम केवल शरीर, अथवा बाह्य असत आत्मा नहीं हो। अज्ञान-वश तुम अपने को शरीर कहते हो, शरीर तुम हो नहीं। तुम अनन्त शक्ति, परमात्मा, निरन्तर, निर्विकार, निर्विकल्प, कैवल्य हो। वही तुम हो। यह जानते ही तुम अपने को समस्त संसार अखिल ब्रह्माण्ड में बसे हुए पाते हो।

हमारे भारत में शीशमहल होते हैं। शीशमहलों की सब दीवालें और छतें तरह तरह के शीशों और दर्पणों से जड़ी होती हैं। मालिक मकान ऐसे कमरे में आता है, और अपने को सब ओर पाता है।

एक बार ऐसे एक शीशमहल में एक कुत्ता आ गया। कुत्ते ने अपनी दाहिनी ओर से कुत्तों के झुण्ड के झुण्ड अपनी ओर आते देखे। आप जानते हैं कुत्ते बड़े द्वेषी होते हैं। कुत्ता अपने सिवाय दूसरे कुत्ते को नहीं देख सकता। वे बड़े द्वेषी होते हैं। जब इस कुत्ते ने दाहिनी ओर से हजारों कुत्तों को अपनी ओर आते देखा, वह बाईं तरफ मुड़ा। इधर की दिवाल पर भी हजारों शीशे जड़े हुए थे। इधर से भी कुत्तों की एक सेना उसे खा लेने, टुकड़े टुकड़े कर डालने के लिये अपनी ओर आती दिखाई दी। वह तीसरी दिवाल की ओर घूमा। फिर भी उसे उसी तरह के कुत्ते दिखाई पड़े। चौथी दिवाल की ओर वह फिरा। अब भी वही गति। उसने छत की ओर मूंड उठाया। वहाँ से भी हज़ारों कुत्ते उसे खा लेने और चीड़ डालने के लिये अपनी ओर से

उतरते दिखाई पडे। वह डर गया। वह कूदा, तो सब ओर से सब कुत्ते कूदे। जब वह भौंकने लगा, तो उसने सब कुत्तो को भौंकते और अपनी तरफ मुंह पसारते देखा। चारो दिवालों से उसकी ध्वनि की प्रतिध्वनि उठने लगी। वह सहम गया। वह इधर उधर कूदने और दौडने लगा। इस तरह बेचारा कुत्ता थक कर वहीं ढेर होगया।

ठीक इसी प्रकार वेदान्त तुम्हे बताता है कि यह संसार शीशमहल के समान है, और ये सब शरीर विभिन्न दर्पणो के तुल्य हैं, और तुम्हारी सच्ची आत्मा या निज स्वरूप का सब ओर ठीक वैसे ही प्रतिबिम्ब पडता है जैसे कि कुत्ता अपना प्रतिबिम्ब चारो दिवालों मे देख रहा था। इसी तरह एक अनन्त आत्मा, एक अनंत ईश, एक अनंत शक्ति विभिन्न दर्पणो में अपना प्रतिबिम्ब डालती है। एक अनन्त राम ही इन सब शरीरो द्वारा प्रतिबिम्बित हो रहा है। मूर्ख लोग कुत्तो की तरह इस संसार मे आते और कहते हैं, "वह मनुष्य मुझे खालेगा, अमुक आदमी मेरे टुकड़े टुकड़े कर डालेगा, मुझे मिटा देगा"। ओह इस संसार मे ईर्ष्या और भय कितना अधिक है। इस ईर्ष्या और भय का क्या कारण है? कुत्ते की अज्ञानता; अथवा कुत्ते की सी अज्ञानता इस ससार के यावत द्वेष और भय का कारण है। कृपया, पटरे उलट दीजिये। इस संसार मे दर्पण वा शीशमहल के मालिक की तरह आइये। इस संसार मे म—रा की तरह नहीं, रा—म* होकर अथवा हरि (बन्दर) की तरह नहीं हरि (विष्णु) की तरह आइये;

* मूल व्याख्यान मे अंग्रेज़ी के 'डॉग' Dog और 'गॉड' God शब्दो का व्यवहार किया गया है। डी० ओ० जी=डॉग माने कुत्ता, और इसके उलटे जी० ओ० डी०=गॉड के माने ईश्वर है।

और आप शीशमहल के मालिक होंगे, आप सम्पूर्ण संसार के स्वामी होंगे। आप जब अपने प्रतिद्वंदियों, भाइयों और शत्रुओं को आगे बढ़ते देखेंगे, आपको हर्ष होगा। कहीं भी किसी प्रकार का गौरव देखकर आपको प्रसन्नता होगी। आप इस संसार को स्वर्ग बना देंगे।

अब हम मनुष्य पर आते हैं। सान्त बीज में आप अनन्त देख चुके। वह उद्भिज वर्ग का उदाहरण था। जन्तु में भी आपको सान्त में अनन्त दिखाया जा चुका। यह प्राणि-वर्ग से उदाहरण था। आप शीशे के मामले में भी सान्त में अनन्त देख चुके। यह उदाहरण धातुवर्ग से लिया गया था। अब हम मनुष्य पर आते हैं।

जैसे कि मूल बीज ने मिटकर हजारों बीजों की उत्पत्ति की, किन्तु वास्तव में असली बीज न बढ़ा और न घटा था, बल्कि वैसे का वैसा ही रहा था; और जिस प्रकार मूल जन्तु बाह्य रूप से मर कर हज़ारों जन्तुओं को पैदा करता है, यद्यपि असली जन्तु ज्यों का त्यों बना रहता है; और जिस प्रकार शीशा टूट जाने से दर्पण टूट जाता है, किन्तु वास्तविक बच्चा छिन्न भिन्न नहीं होता; ठीक उसी प्रकार जब मनुष्य मर जाता है, उसके पुत्र, दो या अधिक, कभी कभी दर्जनों उसका स्थान ग्रहण करते हैं। कुछ अंग्रेजों, अर्थात् हिंदुस्तान के आंग्ल-भारतियों के कोड़ियों बच्चे होते हैं। जन्मदाताओं की मृत्यु हो जाने पर दर्जनों और कोड़ियों उनके स्थान पर आ जाते हैं। फिर इनकी भी मरने की बारी आती है और ये चौगुनी सन्तति अपने पीछे छोड़ जाते हैं। वे भी मर कर और भी बड़ी संख्या अपने पीछे छोड़ जाते हैं। अब फिर वही बात है। जैसे कि मूल जन्तु नष्ट होकर अपने स्थान में दो छोड़ गया था, और इन दो से चार हो गये थे, और चार से आठ हो गये थे, मूल बीज मिट गया था और उससे यथा समय हजारों बीज हो गये थे; ठीक वैसे ही नर और नारी के भी एक जोड़े से कोड़ियों,

नही नहीं हज़ारो, लाखो उसी प्रकार के जोड़े हो जाते हैं। जोड़े का गुणन होता हो जाता है। सविस्तर वर्णन के लिये समय नहीं है। एक व्याख्यान मे ढाचा मात्र दिया जा सकता है।

वेदान्त बताता है कि ठीक वही हाल आपका भी है, जो बीज, जन्तु, या शीशे का था। नर और नारी का प्रारम्भिक जोडा मर गया। उससे, अर्थात् ईसाइयो की बाइबिल के आदम और ईव से संसार के कोटानुकोट वासियो का जन्म हो गया।

यहाँ पुन. वेदान्त आपसे कहता है कि यह देखने मात्र का गुणन, यह देखने मात्र की बाढ वास्तविक वा असली मनुष्य में, जो तुम हो, किसी प्रकार की वृद्धि की द्योतक नहीं है। वास्तविक मनुष्य (संख्या में) बढता नहीं है। तुम्हारे अंतर्गत वास्तविक मनुष्य अनन्त स्वरूप है। आप कह सकते है कि मनुष्य एक अनन्त व्यक्ति है। सब मनुष्यो को मर जाने दीजिये, कोई सा भी एक जोडा बच रहे। इस एक जोड़े से हमे यथा समय कोडियो नर-नारी मिल सकते है। आरम्भिक दम्पती मे जो अनन्त सामर्थ्य, अनन्त शक्ति, और अनन्त योग्यता छिपी हुई या गुप्त थीं, ये आज भी हर जोड़े मे वेघटो, अविकल पाई जाती हैं। यह अनन्तता तुम हो। यह अनन्त सामर्थ्य, और अनन्त शक्ति तुम हो, और यह शक्ति सकल शरीरो में वही है। ये शरीर दर्पण की तरह भले ही बढ जाँय, परन्तु मनुष्य अर्थात् वास्तविक अनन्तता एक है। तुम इन शरीरो को चाहे बहुत कुछ मानो, तुम इन्हे चाहे जैसा समझो, किन्तु तुम ये (शरीर) नहीं हो। आप अनन्त शक्ति हैं, जो केवल एक अपरिछिन्न है। आप कल जो कुछ थे, वही आज भी हैं, और सदा रहेगे। एक सामान्य उदाहरण से बात अधिक साफ़ हो जायगी।

महाशय, आप कौन हैं ? मै अमुक श्रीमान् हूँ। अस्तु, क्या आप मनुष्य नहीं हैं ? हा, अवश्य मनुष्य हूँ। आप कौन हैं ? मै अमुक श्रीमती हूँ। क्या आप नारी नही हैं ? अवश्य नारी हूँ। किसी से भी पूछ देखिये, वह अपने को मनुष्य कहेगा। किन्तु किसी अज्ञानी मनुष्य से प्रश्न कीजिये, वह आप से इतना कदापि नहीं कहेगा कि, मैं मनुष्य हूँ। वह यह भी कहेगा कि, मैं अमुक महाशय हूँ, मै अमुकी महाशया हूँ। किन्तु, मनुष्य तो आप भी हैं। तब वह शायद अपना मनुष्य होना मंजूर कर ले।

अब हमारा सवाल है, आपने क्या कभी कोई शुद्ध, अविशिष्ट वा अनिर्दिष्ट मनुष्य देखा है ? कभी आपने ऐसा कोई देखा है ? जहाँ हमें संयोग पड़ता है, अमुक श्रीमान या अमुको श्रीमतो प्रकट हो जाती है, कोई महाशया या कोई महाशय निकल आते हैं। किन्तु वास्तविक मनुष्य अर्थात् कोरा वा शुद्ध मनुष्य आप कहीं नही पा सकते। तथापि हम जानते हैं कि यह शुद्ध मनुष्य सब वस्तुओं मे विशेष है। यह जाति, अर्थात् कोरा मनुष्य, अपने रामपन और मोहनपन से रहित, अथवा अपने महाशयपन या महाशयापन से अतीत मनुष्य मिलना आप को दुर्घट है। इस प्रकार के नाम वा उपाधि आदि से रहित विशुद्ध मनुष्य हम कहीं नही पा सकते, यद्यपि यह मनुष्य इन सब शरीरो में वर्तमान है। अमुक महाशय को अपने सामने लाइये। उसका मनुष्य-अंश अलग कर लीजिये। मनुष्य अर्थात् वास्तविक मनुष्य घटा दीजिये, फिर क्या बच रहेगा ? कुछ नहीं। सब गया, सब गायब। 'महाशय' निकाल डालिये, सम्पूर्ण महाशय-पन तथा दूसरी बाते निकाल डालिये, हमारे लिये कुछ नहीं रह जाता, किन्तु वास्तविक मनुष्य अब भी वहाँ है। राम

वास्तविक मनुष्य से मूलभूत शक्ति का अर्थात् आपके भीतर की अनन्तता का अर्थ लेता है। तत्त्व-विचारक बर्कले के शब्दों के जाल में न भूलिये। पूरी परीक्षा और विवेचना कीजिये। आप देखेंगे कि भीतरी अनन्तता वास्तव में ऐसी कोई वस्तु है, जो देखी, सुनी और चखी नहीं जा सकती। फिर भी जो कुछ आप देखते हैं, सब का मूल (सोता) यही है, यही अखिल दृष्टि का कारण है, यही अखिल ध्वनि का कारण है, यही उन सब चीजों का सारभूत है, जो आप चखते हैं। यही वास्तविक सत्ता है, यही आत्मदेव है, जो कुछ आप जानते, देखते, सुनते या छूते हैं। सब में यही एक शक्ति है। यह सर्वत्र मौजूद होते हुए भी अकथनीय है। इस प्रकार हमारी समझ में आता है कि सान्त के भीतर का अनन्त देखा, सुना, समझा, और विचारा नहीं जा सकता है। और फिर भी आप जो कुछ देखते हैं, इसी के द्वारा; जो कुछ सुनते हैं, इसी के द्वारा; और जो कुछ सूँघते हैं, इसी के द्वारा। यह वर्णनातीत होते हुए भी मूलभूत है, और समस्त वर्णित पदार्थों का सारांश है।

अन्त में राम आप से चाहता है कि आप अपने ऊपर केवल एक कृपा करें। सब छोड़ कर मनुष्य बनिये। ये सब शरीर ओस के बूंदों के समान हैं, और असली मनुष्य सूर्य की किरण के समान है, जो ओस के मोतियों वा दानों में होकर गुज़रती और उन सब को डोरे में पिरो देती है। ये सब शरीर माला के मनकों के तुल्य हैं और असली मनुष्य उन सब में होकर निकलने वाले डोरे के समान है एक क्षण के लिये यदि आप शान्त बैठ कर ऐसा विचारें कि,

आप विश्व-मानव हैं, आप अनन्त शक्ति हैं. तो आप देखेंगे कि आप वास्तव में वही है । मनुष्य होते हुए भी मै सब कुछ हूँ ; वह अनिश्चित मनुष्य या मनुष्य वर्ग होता हुआ भी मैं सब कुछ हूँ ; तुम सब एक हो, वास्तव मे तुम सब एक हो। इस श्रीमानपन वा श्रीमतीपन से ऊपर उठिये । इससे ऊपर उठतेही आप की समस्त से एकता हो जाती है । कैसी महान् धारणा है ! आप समस्त से एक हो जाते हैं, तब आप की अखिल विश्व से एकता हो जाती है । एक उपनिषद् के एक अंश का यह उल्था है, किन्तु कुछ रूपान्तर मे है ।

"I am the Unseen Spirit which informs
All subtle essence ! I flame in fire,
I shine in sun and moon, planets and stars,
I blow with the winds, roll with the waves !
I am the man and women, youth and maid !
The babe new born the withered ancient, propped
Upon his staff ! I am whatever is—
The black bee and the the tiger and the fish,
The green birds with red eyes, the tree, the grass,
The cloud that hath the lightning in its womb,
The seasons and the seas ! In Me they are,
In Me begin and end."

(Upanishad, Sir Edwin Arnold, translator.)

मै ब्रह्म अगोचर निर्विकार ;
सब सूक्ष्मतत्त्व का परम सार ।
पावक मे ज्वाला मम विकाश ;
रवि शशि ग्रहगण मे मम प्रकाश ॥ १ ॥

मैं बहता हूँ नित पवन - संत ;
लहराता हूँ सह जल - तरंग ।
मैं नर हूँ, पुनि मैं सुभग नारि ;
मैं बालक हूँ, मैं ही कुमारि ॥ २ ॥

मैं ही हूँ पुनि नवजात बाल ;
मरणोन्मुख बूढा अति बिहाल ।
मैं श्याम मक्षिका, सिंह काल ;
मैं हरित कीर दृग लाल लाल ॥ ३ ॥

मैं ही हूँ जल में जलज मीन ;
मैं ही तृण, मैं ही तरु नवीन ।
चंचल चपला घन-घटा बीच ;
मेरी ही छवि कवि रहे खींच ॥ ४ ॥

मैं ही सब ऋतु, मैं ही समुद्र ;
मुझ मे ही है सब बृहत क्षुद्र ।
मुझ मे ये दृश्यादृश्यमान ;
करते सु - आदिमध्यावसान ॥ ५ ॥

अनन्त तुम हो; वह अनन्तता तुम हो ; और वह अनन्तता होने के कारण तुमने मानो इन कल्पित, मिथ्या और माया मय शरीरो की सृष्टि की है । तुमने अपने लिये शीशमहल की भाँति यह संसार रचा है । तुम उसी एक अनन्त वा विश्व-व्यापी ईश्वर का ध्यान रखो, जो वास्तव मे तुम हो और जो इस जग में रहता और व्याप्त है ।

कारण शरीर पर आत्मसूर्य।

——:o:——

(ता० १२ जनवरी १६०३ को अमेरिका के सैन फ्रासिस्को के गोल्डन गेट हाल मे दिया हुआ व्याख्यान।)

——:o:——

महिलाओं और भद्रपुरुषों के रूप मे नित्य स्वरूप !

आज के व्याख्यान का विषय अनित्य मे नित्य है। प्रारम्भ करने मे पहले कुछ शब्द उस प्रश्न के उत्तर मे बोले जाँयगे, जो राम से बारबार किया गया है:– "जिस रंग के कपडे आप पहनते है उस की विशेषता क्या है? बौद्ध पीले, और वेदान्ती साधु अर्थात् स्वामी गेरुए रंग के कपडे क्यो पहनते है?"

आप जानते है हरेक धर्म के तीन अंग होते हैं। प्रत्येक धर्म का अपना अपना तत्त्व-शास्त्र, पुराणशास्त्र, और कर्मकाण्ड है। दर्शनशास्त्र के बिना कोई धर्म टिक नही सकता। विद्वानो, बुद्धिमानो और युक्तिशील श्रेणी के लोगो पर प्रभाव डालने के लिये धर्म मे दर्शन शास्त्र की ज़रूरत पड़ती है; रसिक चितवृत्तियो अथवा जोशीले स्वभाव के लोगो का मन मोहने के लिये पुराण की, और जन साधारण को अपनी ओर खीचने के लिये कर्मकाण्ड की उस मे आवश्यकता पडती है।

वस्त्रो के रंग का सम्बन्ध वेदान्त धर्म के कर्मकाण्ड - विभाग से है ईसाई 'क्रॉस' अर्थात् सूली के चिह्न को क्यो धारण करते हैं! यह कर्मकाण्ड है। ईसाई अपने गिर्जाघरो की चोटियो पर 'क्रॉस' क्यो लगाते हैं? यह भी कर्मकाण्ड है। रोमन कैथॉलिक (सम्प्रदाय के)

ईसाइयो में कर्मकाण्ड की अधिकता है। प्रेटेस्टैंटो (दूसरी ईसाई-सम्प्रदाय) मे कर्मकाण्ड की न्यूनता है, किन्तु कुछ न कुछ है अवश्य। इसके बिना उनका भी काम नहीं चलता। इसी प्रकार ये रंग वेदान्त धर्म का कर्मकाण्ड है। हिन्दू की दृष्टि में लाल और गेरुए रंगो का वही अर्थ है जो ईसाई के लिये 'क्राँस' का है। सूली (क्राँस) क्या सूचित करती है? वह ईसा की मृत्यु की, ईसा के प्रेम की यादगार है। ईसा ने जनता के लिये अपने शरीर को सूली पर चढ़ने दिया। ईसाइयो के सूली-चिह्न पहनने का यह अभिप्राय है। यदि आप किसी हिन्दू से सूली का अर्थ पूछे तो वह कुछ और ही बतावेगा। वह कहेगा, ईसा का उपदेश है सूली लो, अपनी सूली लो और मेरा अनुसरण करो। 'मेरी सूली लो' यह वह नहीं कहता। बाइबिल मे (बाइबिल के नये संस्करण मे) सेंट पाल या ईसा आप से ईसा की सूली उठाने को नहीं कहते, किन्तु वे कहते हैं अपनी सूली लो। ठीक यही शब्द वहाँ हैं, अपनी सूली लो। इनका अर्थ है, अपने शरीर को सूली पर चढ़ाओ, अपनी विषयासक्ति को सूली पर चढाओ, अपने परिच्छिन्नात्मा को सूली पर चढाओ, अपने अहंकार को सूली पर चढ़ाओ। यह उसका अर्थ है। अतएव सूली अपने स्वार्थों को, अपने तुच्छ अहंकार को, अपने तुच्छ अहंकारमय, स्वार्थमय परिच्छिन्नात्मा को सूली देने का चिह्न होना चाहिये। सूली का अर्थात् सूली-चिह्न पहनने का यह अर्थ है। इसके अर्थ आप चाहे इस प्रकार लें चाहे और प्रकार, यह आप की इच्छा पर निर्भर है। किन्तु वेदान्त सदा आप से सूली को इसी अर्थ में लेने की प्रार्थना करता है। और इसी अर्थ में एक बौद्ध पीत वस्त्र पहनता है।

पीला रंग, कम से कम भारत में, मुर्दे का रङ्ग है। मृतक शरीर का पीला रङ्ग होता है। पीले वस्त्रों या पीली पोशाक से सूचित होता है

कि, उनको धारण करनेवाला मनुष्य अपने शरीर को सूली पर चढा चुका है, अपने रक्त-मास के शरीर को निरानिर तुच्छ समझ चुका है, विषयासक्ति से ऊपर उठ. चुका है, सब स्वार्थमयपूर्ण हेतुओं से परे है; ठीक वैसे ही जैसे कि रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के ईसाई जब किसी को साधु बनाते हैं तब उसे कौफिन या अरथी मे रखते हैं और उसके सिरहाने खड़े होकर 'जौब' (Job)* वाला अध्याय पढ़ते हैं। उन गीतो, भजनो और उपदेशो को वे उसके निकट पढते हैं, जो साधारणतः मुर्दे के पास पढे जाते है। और अरथी में रक्खे हुए मनुष्य को विश्वास और निश्चय कराया जाता है कि वह मुर्दा है; अर्थात् समस्त प्रलोभनो, सम्पूर्ण विषयासक्तियो, और समग्र सासारिक इच्छाओ के लिये वह मुर्दा है। बौद्धों को पीले कपड़े पहनने पडते हैं, जिसका अर्थ है कि उस मनुष्य को सासारिक आकाक्षाओ से, स्वार्थपूर्ण उद्देश्यो और मन्तव्यो से अब कोई मतलब नहीं रह गया, मानो संसार के लिये वह मुर्दा है। वेदान्तियो के गेरुये रङ्ग का अभिप्राय है अग्नि का रङ्ग। यह रङ्ग (वक्ता के कपडो के रङ्ग से अभिप्राय है) ठीक ठीक आग के रङ्ग का सा रङ्ग नही है, किन्तु आग से इसकी अपेक्षा अधिक मिलता हुआ दूसरा रंग अमेरिका मे नही मिल सका। हमारे भारत में एक रङ्ग है जो ठीक अग्नि के रङ्ग का है। एक भारतीय साधु कहीं पर बैठा हो, तो दूर से देखकर आप नही जान सकते कि मनुष्य है या अंगारो का ढेर। यह रंग अग्नि के सदृश है, इसका अर्थ यह है कि मनुष्य ने अपने शरीर का दाह कर दिया है। आप जानते हैं कि हमारे भारत में मृतक शरीर गाडा नही जाता, हम उसे भस्माभूत करते अर्थात् जलाते हैं। इस प्रकार यह लाल रङ्ग स्पष्ट सूचित करता है कि इन कपडो को पहननेवाले मनुष्य ने अपने शरीर का हवन कर दिया है,

---

* बाइबिल का एक भाग।

अपने शरीर को सत्य की वेदी पर चढा दिया है, सब सासारिक इच्छाये जला दी, जला दी, जला दी हैं। सब सासारिक इच्छाये. सब सासारिक आकाक्षायें, सब सासारिक कामनाये और लालसाये अग्नि देव के हवाले कर दी गई हैं।

सूली का भी रङ्ग लाल है। ईसा का रक्त भी लाल है। ईसाइयो को भी किसी लाल चीज़ की आवश्यकता पडती है। यह भी लाल है, और रक्त तथा अग्नि होने के दोहरे अर्थ रखता है। किन्तु यह एक और अभिप्राय का भी सूचक है। पीले रङ्ग मे भी शरीर की मृत्यु अर्थात् विषयासक्ति की मृत्यु प्रकट हो सकती थी, किन्तु वे (हिन्दू साधु) पीले वस्त्र नही पहनते, वे अग्नि के रङ्ग के लाल कपडे पहनते हैं। इसका भाव यह है कि, एक दृष्टि मे तो यह मरण है और दूसरी दृष्टि से जीवन। आप जानते हैं, अग्नि मे जीवन होता है, अग्नि जीवन का पालन करती है, अग्नि मे तेज होता है, शक्ति होती है। लाल वस्त्र जतलाते हैं कि समस्त तुच्छ कामनायें, समग्र स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियें और क्षुद्र आकाक्षाये अग्नि के हवाले कर दी गईं, अर्थात् मार दी गईं। किन्तु दूसरी दृष्टि से उन्ही के द्वारा जीवन, ज्वाला, तेज और शक्ति प्रकट हो आते हैं। लाल पोशाक दोहरा अर्थ रखती है। वह विषयासक्ति की तो मृत्यु और आत्मिक जीवन का अर्थ रखती है। भयभीत मत हो, भयभीत न हो। वेदान्त जल-संस्कार (वैपटिज़्म. ईसाई धर्म का एक संस्कार) के बदले अग्नि-संस्कार की शिक्षा देता है। वह अग्नि, अग्नि-ज्वाला के संस्कार का शक्ति और तेज के संस्कार का उपदेश देता है। ओह ! भय न करो कि यह अग्नि है और इसे भस्म कर देगी। तुम भी बाइबिल मे पढते हो, "जो अपना जीवन बचाना चाहे वह जीवन खोवे"। "He who would save his life must lose it." इस तुच्छ जीवन को खो कर तुम असली

जीवन की रक्षा कर सकते हो, यही सिद्धान्त है। अरे! इस संसार के लोग अपने जीवन का कैसा सर्वनाश करते हैं। वे अपने सांसारिक जीवन को कैद की ज़िन्दगी, मृत्यु की ज़िन्दगी, अर्थात् नरक की ज़िन्दगी बना लेते हैं। राम को आप क्षमा करें, यह सत्य है। उनके हृदयों पर, उनकी छातियों पर चिन्ता और शोक का विराट हिमालय, चिन्ता और शोक का विराट पहाड रक्खा हुआ है। हिमालय हमें न कहना चाहिये, हिमालय तो साक्षात् शक्ति और विभूति है। हम शोक और चिन्ता का महाशक्तिशाली पहाड कहेंगे। वे अश्रु और हास्य के बीच में घडी के पेंडुलम अर्थात् लटकन की तरह सदा झूला करते हैं. कभी किसी की टेढी नज़र और धमकी से हताश होते हैं, कभी किसी की कृपा और आशाजनक वचनों से प्रसन्न। अपनी कल्पना से वे सदा अपने इर्दगिर्द कारागार, अंधकूप और नरक की सृष्टि उत्पन्न किया करते हैं।

वेदान्त चाहता है कि आप इस तुच्छ प्रकृति, इस मूर्खता से पीछा छुडा लें। इस अज्ञान को, इस परिच्छिन्न अहंकार को, इस तुच्छ स्वार्थपूर्ण प्रकृति को, जो आप के शरीर को नरक बनाये हुए है, जलादो और ज्ञान की अग्नि को भीतर आने दो। अग्नि को हिन्दू सदज्ञान का स्थानापन्न बनाते हैं। ज्ञान की अग्नि भीतर आने दो, और वह सब भूसी तथा कूडा करकट जल जाने दो; सिर से पैर तक अग्निरूप, स्वर्गीय अग्निरूप नखशिख दहकते हुए तुम निकल आओ. यही इस रंग का अर्थ है।

किसी ने राम से पूछा था, "तुम ध्यान क्यों खींचते हो?" राम ने उसे कहा "भाई! तुम्हीं समझ कर बताओ कि इन कपडों में क्या दोष है"। उसने कहा, "मैं तो कोई दोष या हानि नहीं पाता, किन्तु दूसरे लोग दोष निकालते हैं"। परन्तु दूसरों की अज्ञानता के तुम

ज़िम्मेदार नहीं हो। अपनी बुद्धि और दिमाग से सावधान हो। यदि आप स्वयं कोई दोष निकाल सकते हैं तो इन कपड़ों में निकालिये। यदि दूसरे दोष निकालते हैं तो आप उनके ज़िम्मेदार नहीं हैं।

सब से श्रेष्ठ साधु, श्रेष्ठतम भारतीय साधु, इस संसार में सबसे बड़ा स्वामी, सूर्य अर्थात् उदय होता हुआ सूर्य है। निकलता हुआ सूर्य नित्य आप को लाल पोशाक में, वेदांती साधु की पोशाक में दर्शन देता है। आज के व्याख्यान में, यह सूर्य अनित्य शरीरों की अपेक्षा नित्य स्वरूप को आप के सन्मुख दर्शायेगा। सूर्य, स्वामी, साधु, लाल वस्त्रधारी सूर्य को हम सच्ची आत्मा, वास्तविक स्वरूप, जो इस सूर्य की अपेक्षा बेबदल है, जो नित्य है, जो आजकल और हमेशा एक-रस है, उसका एक चिह्न मान लेते हैं। हम अब अनित्य अर्थात् बदलने वाली वस्तुओं की चर्चा करेंगे, जो मनुष्य में अनित्य शरीरों के स्थान पर हैं। मनुष्य में बदलने वाले अर्थात् अनित्य पदार्थ भी हैं, और उसी मनुष्य में निर्विकार, निर्विकल्प, नित्य वास्तविक आत्मा भी है। वास्तविक आत्मा सूर्य के समान है। और परिवर्तनशील पदार्थ तीन शरीर हैं; जो घन रूप; लघु रूप और बीज रूप हैं। राम इन शरीरों को ये नाम देता है। संस्कृत में इन्हें स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर कहते हैं। और राम उनका उल्था घन (gross) शरीर, लघु (subtle) शरीर, बीज (seed) शरीर करता है। ये तीनों शरीर अर्थात् कारण, सूक्ष्म और स्थूल शरीर परिवर्तनशील पदार्थ हैं; ये आत्म नहीं, किन्तु अनात्म हैं। ये परिवर्तनशील और अस्थिर हैं। ये आप स्वयं नहीं हो। आप नित्यात्मा हो, निर्विकार हो। यही दिखाना है।

आपको तीनों शरीरों और वास्तविक आत्मा की स्पष्ट धारणा कराने के लिये हम एक उदाहरण का सहारा लेते हैं। कृपा पूर्वक

खूब ध्यान दीजियेगा। आज के व्याख्यान में युक्ति की बातें न बघारी जाँयगी, बहुत तर्क-वितर्क न होगा। आज मनुष्य का मसला (सिद्धान्त), जैसा कि हिन्दुओं ने सिद्ध किया है, आप को साफ करके बताया जायगा। उसकी स्पष्ट व्याख्या की जायगी ताकि आप तुरन्त समझ सकें। पीछे यदि समय मिलेगा तो हम तत्व शास्त्र में प्रवेश करेंगे और प्रश्न के प्रत्येक पहलू को दलीलों से सिद्ध करेंगे। आप जानते हैं कि किसी विषय पर न्याय-शास्त्र का प्रयोग करने के पूर्व हमें पहले समझ लेना चाहिये कि सिद्धात क्या है। इस लिये आज सिद्धात का अभिप्राय स्पष्ट किया जायगा। और आप देखेंगे कि इस व्याख्या में भी, अथवा आवरण रूपी मेघों का दूर होना और सिद्धात का समझना ही स्वयं प्रमाण हो जायगा। जैसा कि पोप (एक अंग्रेज़ कवि) ने लिखा है।

"Virtue is a fairy of such a beauteous mien,
As to be loved needs only to be seen.

"नेकी एक ऐसी रूपवती सुंदरी है कि उसे प्यार करने के लिये केवल देख लेने भर की आवश्यकता है।"

इसी प्रकार सत्य में भी ऐसी भव्य सुंदरता है कि आपके हृदयों में उसके पैठ जाने के लिये केवल उसे साफ़ साफ़ देख लेने की ज़रूरत है। सूर्य के अस्तित्व के लिये किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। सूर्य को देखना ही सूर्य को प्रमाणित करना है। हर एक चीज़ जो कुछ भी हो किसी बाहरी प्रकाश में दिखाई देती है, किन्तु प्रकाश को किसी दूसरे प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती कि उसकी सहायता से वह देखा जा सके। इस लिये आज बात को किसी युक्ति और प्रमाण के बिना ही केवल सिद्धात आपके सामने रख दिया जायगा। अब हम उदाहरण पर आते हैं।

कृपया आप राम के साथ हिमालय की हिमशिलाओं (glaciers) को चलिये। कैसा जगमग दृश्य हमें दिखाई पड़ता है। हीरे का सा पहाड़, सब सफ़ेद, अद्भुत, झलझलाता हुआ, श्वेत हिमशिलाओं का समुद्र, अति चमकदार, अति सुन्दर, प्रभाशाली, उत्साह फूंकनेवाला है। वहाँ न कोई वनस्पति है, न पशु, न नर न नारी। इन बर्फ़ीली चट्टानों पर जीवन का एक स्रोत मात्र सूर्य अर्थात् इन मनोहर दृश्यों पर चमकने वाला प्रभामण्डल रूपी सूर्य दिखाई देता है। अहा, कैसा सुहावना दृश्य है! कभी कभी सूर्य का प्रकाश बादलों से छनकर भूमि पर पड़ता है, और सारी दृष्टिगत भूमि को अग्निवर्ण से दीप्त कर देता है, सम्पूर्ण दृश्य को स्वामी की पोशाकें पहना देता है, सारी रंगभूमि को साधु अर्थात् भारतीय साधु बना देता है। कुछ ही देर बाद सब दृश्य पीला इत्यादि हो जाता है। किन्तु है इस रंगशाला में केवल एक वस्तु, दूसरी कोई वस्तु नहीं। वह एक वस्तु सूर्य है।

आप समझते हैं कि इन हिम-शिलाओं में हिंदुस्थान की बड़ी बड़ी नदियाँ छिपी हुई अर्थात् लुकी हुई है। भारत की सब बड़ी बड़ी नदियाँ इन्हीं हिम-शिलाओं से निकलती और बहती है। इन हिम-शिलाओं में नदी का मूल स्थान या कारण शरीर है। अब आप कृपापूर्वक राम के साथ साथ उतर कर नदी-जीवन की दूसरी अवस्था पर चले आइये।

यहाँ हम दूसरा ही रूप देखते हैं, दूसरे ही प्रकार के दृश्यों और भूभागों (landscapes) पर आते हैं। अब भी हम पहाड़ में ही हैं, किंतु बरफ से ढकी हुई चोटियों पर नहीं, कुछ नीचे पर है। यहाँ मीलों तक, दर्जनों और कोड़ियों मीलों तक सब कहीं सुंदर गुलाब लगे हुये हैं और पवन गुलाब की रुचिकर मधुर सुगन्ध से पूरित है। यहाँ सुन्दर बुलबुलें और दूसरी चिड़ियें गा रही हैं, वर्ष भर नित्य

प्रेमपत्र लिखा करती है अथवा प्रेम प्रलाप करती हैं। यहाँ मनोहर गायक पक्षी वा अन्य पक्षी विशेष अपनी मीठी तानों से पवन को परिपूर्ण करते हैं, और यहाँ हम शानदार, सुंदर, मनोहर वृक्षों के बीच में अत्यन्त चित्ताकर्षक गंगा या किसी दूसरी नदी को अपने घूमते फिरते, टेढ़े मेढ़े मार्ग से जाते, खेलते, पहाड़ों में किलोल करते हुए देखते हैं। आहा! कैसे सुंदर नाले और छोटी छोटी नदियाँ यहाँ हमें मिलती हैं। इन सुंदर नालों में तट पर लगे हुए वृक्षों की परछाँही पड़ती हैं, और ये छोटी नदियाँ या नाले बड़े सुहावने ढंग से खूब मौज से खेलते हुए कभी इधर झुकते हैं और कभी उधर। बार बार चक्कर काटते, कभी इधर मुड़ते और कभी उधर, तथा बराबर गाते हुए, ये नदियाँ और नाले बह रहे हैं।

यह क्या है? नदी-जीवन की यह दूसरी दशा है। यहाँ नदी अपने सूक्ष्म शरीर में है। यह नाले या क्षुद्र नदी का रूप नदी का सूक्ष्म शरीर है। यह सूक्ष्म शरीर नदी के कारण शरीर से निकलता है। यह नदी के कारण शरीर से आया है। आप जानते हैं कि नदी के कारण शरीर पर सूर्य चमक रहा था, और नदी के कारण शरीर पर सूर्य के ताप और प्रकाश की क्रिया से नदी का सूक्ष्म-शरीर निकल आया। यह सूक्ष्म-शरीर है। यह अति चञ्चल, डाँवाडोल, घुमावदार, बाँका-तिरछा है। कहीं यह कभी नीचे फाँदता और जोश तथा जल्दी में छलांग भर रहा है, और कहीं यह शांत भाव से झील बनकर स्थिरता धारण करता है। यह बहुत ही डाँवाडोल, चञ्चल और परिवर्तनशील है।

आओ, थोड़ा उतर कर समभूमि में पहुँचें। यहाँ मैदान में दूसरे ही दृश्यों से हमारा सामना है। वही जल, वही नदी हमने बर्फ़ की टोपी पहने हिमशिलाओं में कारण रूप में मौजूद देखी थी, और नीचे पहाड़ों

पर अपने सूक्ष्म आकार में उसने अत्यन्त विलक्षण और कविता रूप धारण किया। वही जल, वही नदी, अब मैदान में मटियारी नदी हो जाती है। मैदान मे वही नदी, वही गंगा बडी शक्तिशालिनी सरिता हो जाती है। वह बहुत बदल गई। उसने नये वस्त्र अर्थात् नया रंग धारण किया है। उसकी असली स्वच्छता और निर्मलता नही रह गई। वह मैली और गंदली हो गई, तथा अपना रंग भी बदल दिया। मटियारी वह होगई। और साथ ही साथ उसकी गति भी बदल गई। अब वह मद अर्थात् अदि मंद होगई। और दूसरी ओर अब वह अति उपयोगी हो गई है। इस विराट नदी के जलतल पर अब नावें और जहाज़ चल रहे हैं, और व्यापार हो रहा है। लोग आकर नहाते है, और महान् नदी का जल अब नहरो और जल-प्रवाहो वा बम्बों तथा खेत सींचने और आस पास के देश को उपजाऊ बनाने के काम में लाया जा रहा है।

नदी–जीवन की यह तीसरी दशा नदी का स्थूल शरीर है। और नदी के जीवन का हाल क्या है? नदी की असिल प्रेरक शक्ति का क्या हाल है? नदी की असली प्रेरक शक्ति सूर्य अर्थात् जाज्वल्यमान ज्योतिमण्डल है। अब इस उदाहरण को मनुष्य पर घटाइये।

तुम्हारे तीन शरीर कहाँ हैं, और उनका एक दूसरे के साथ तथा तत्त्व स्वरूप से अर्थात् तुम्हारे वास्तविक स्वरूप या आत्मा से कैसा सम्बन्ध है!

अपनी गहरी नींद (सुषुप्ति) की अवस्था मे जहाँ अपने से इतर प्रत्येक वस्तु से तुम बेखबर रहते हो, अर्थात् जहाँ तुम संसार के विषय मे कुछ नहीं जानते, जहाँ पिता पिता नही है, माता माता नही है, घर घर नही है और संसार संसार नहीं है, जहाँ आज्ञानता है, जहाँ अज्ञानता के सिवाय और कुछ नहीं है. जहाँ अव्यवस्था की हालत है, मृत्यु की हालत

है, प्रलय की हालत है, जहाँ यों कह लीजिये कि पूरी शून्यता की दशा है, ऐसी गाढ़ निद्रा की अवस्था में वास्तव मे आप क्या हैं ?

वेदान्त कहता है, वहाँ उस दशा मे. जिसकी जाँच आप मे से अधिकाश ने कभी नहीं की है, मनुष्य का कारण शरीर है, मनुष्य के वास्तविक स्वरूप या आत्मा के नीचे मनुष्य का कारण शरीर सीधा चित लेटा हुआ है। मनुष्य-जीवन की नदी के जीवन मे तुलना होने पर, हिम-शिलाओ पर चमकते हुये सूर्य की भाँति वहाँ हम शुद्ध आत्मा पाते हैं।

कृपया ख़ूब ध्यान से सुनिये। अब एक अत्यन्त सूक्ष्म बात का वर्णन किया जायगा। किसी और दिन भी यह बात कही जा चुकी है, परंतु अवसर चाहता है कि वह फिर दोहराई जाय।

तुम्हारी गहरी नीद अर्थात् सुषुप्ति की अवस्था मे यह संसार मौजूद नही है, केवल स्वप्न-भूमि है। जागने पर तुम कहते हो कि, "गहरी नींद की दशा मे कुछ वर्तमान नहीं था, कुछ मौजूद नहीं था. कुछ नहीं"। वेदात कहता है, सचमुच उस गहरी नींद की दशा में कुछ मौजूद नहीं है। किंतु आप जानते है, जैसा कि हेगेल (Hegel) ने साफ़ साफ़ दिखाया है (जर्मन दार्शनिक हेगेल से पहले ही हिन्दू ऋषिगण विचार कर सिद्ध कर गये है कि यह 'कुछ नहीं' भी कुछ है) यह 'कुछ नहीं' भी कारण-शरीर है। यह वस्तु-अभाव, जिसे आप अपनी जाग्रत दशा में 'कुछ नहीं' बताते हैं, कारण शरीर है; यह आपके जीवन की हिम-शिला है। जैसा कि बाइबिल मे कहा गया है कि, 'कुछ नहीं' से ईश्वर ने कुछ की सृष्टि की; उसी प्रकार हिंदुओं ने दिखलाया है कि इस कारण शरीर से जिसे जागने के बाद आप 'कुछ नहीं' वर्णन करते हैं, इस कारण-शरीर से जिसे आप 'कुछ नहीं' कहते हैं, इस कारण-शरीर या 'कुछ नहीं' से समस्त संसार निकलता या पैदा होता है। यदि तत्त्व-ज्ञानी लोग

आकर कहे 'कुछ नहीं' से 'कुछ' कदापि नहीं निकल सकता, तो वेदांत कहता है, जिसे हमने 'कुछ नहीं' कहा है वह वास्तव में 'कुछ नहीं' नहीं है। आप उसे केवल जागने पर 'कुछ नहीं' कहते हैं। आप जानते हैं कि एक ही शब्द की हम जिस तरह चाहें व्याख्या कर सकते हैं। यह वास्तव में 'कुछ नहीं' नहीं है। यह कारण-शरीर है। यह हिम-शिलाओं के समान है। हाँ, अब आप कहेंगे, हम समझ गये कि उस सुषुप्ति से, जिसे हम 'कुछ नहीं' कहते हैं, कुछ का जन्म होता है, और वह देखने मात्र 'कुछ नहीं' कारण-शरीर है। किंतु अपने भीतर के सूर्य का अनुभव कीजिये, भीतरी ईश्वर का अनुभव कीजिये, आत्मा का अनुभव कीजिये, जो कारण शरीर की इस हिम-शिला में इस समस्त सृष्टि की उत्पत्ति करता है। सूर्य या ईश्वर या आत्मा का अनुभव कीजिये। आप पूछेंगे कि इसका क्या अर्थ है? कृपा करके सुनिये।

उठने पर आप कहते हैं, "ऐसी गहरी नींद सोया कि स्वप्न में कुछ भी नहीं देखा"। उस पर हम कहते हैं कृपा-पूर्वक इस कथन को क़ागज पर लिख लीजिये। तब वेदांत आकर कहता है कि, यह कथन ठीक उसी मनुष्य का सा कथन है, जिसने कहा था कि घोर रात्रि में अमुक अमुक स्थान पर एक भी प्राणी मौजूद नहीं था। न्यायकर्त्ता ने उससे यह कथन कागज़ पर लिख लेने को कहा, और उसने यही किया। हाकिम ने उससे प्रश्न किया, क्या यह कथन तुम्हारा सच है? उसने कहा, हाँ। तुम किम्बदन्ती के आधार पर यह बात कह रहे हो अथवा अपनी निजी जानकारी के आधार पर? तुमने स्वयं देखा है। उसने कहा, हाँ, मैंने स्वयं देखा है। बहुत ठीक। यदि तुमने अपनी आँखों से देखा है और यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी बात को सत्य समझें कि वहाँ कोई मौजूद नहीं था, तो अनन्तः तुम मौक़े पर अवश्य उपस्थित रहे होगे, तभी तुम्हारा यह बयान सही हो सकता है। किंतु यदि तुम स्थल पर

उपस्थित थे तो तुम्हारा यह बयान अक्षरश: सत्य नहीं है, अर्थात् सर्वथा ठीक नहीं है, क्योंकि मनुष्य होते हुए तुम मौजूद तो थे। कम से कम मनुष्य मौक़े पर मौजूद था। इस प्रकार यह, कि कोई मौजूद नहीं था, उस स्थल पर एक भी मनुष्य वर्तमान नहीं था, मिथ्या है, अर्थात विरुद्ध बयान है। इसके सत्य होने के लिये, और तुम चाहते हो कि हम इसे सत्य समझें, इसका असत्य होना जरूरी है। इसका असत्य होना इसलिये जरूरी है कि कम से कम एक मनुष्य को स्थल पर मौजूद होना चाहिये।

इसी प्रकार, जागने पर जब हम बयान करते हैं कि "अरे भाई, ऐसी गहरी नींद मैं ने ली कि उस स्थल पर कुछ भी मौजूद न था", तो मैं कहता हूँ, महाशय! आप मौजूद थे। यदि आप सोये होते, यदि आपका सच्चा स्वरूप अर्थात् वास्तविक आत्मा और वास्तविक सूर्य, वास्तविक ज्योति-मंडल, वास्तविक ईश्वर सोया होता, तो स्वप्न की अव्यवस्था और शून्यता की गवाही कौन देता? जब आप स्वप्न की अवस्था और शून्यता की गवाही दे रहे हैं, तो आप वहाँ अवश्य उपस्थित होंगे। इस प्रकार आपकी गहरी निद्रा में, वेदान्त कहता है, कि वहाँ दो वस्तुयें अवश्य दिखाई देती हैं:—(१)शून्यता, जो हिम-शिलाओं या कारण-शरीर के तुल्य है, और (२)साक्षी-ज्योति, अर्थात् सूर्य, प्रकाशमान आत्मा, प्रभापूर्ण स्वरूप या ईश्वर, जो उस सब को देख रहा और गहरी निद्रित अवस्था के उजाड़-खण्ड पर भी चमक रहा है। वहाँ पर सच्चा स्वरूप नित्य वा निर्विकार सूर्य है, और गहरी नींद की वह शून्यता कारण-शरीर है, जो परिवर्तनशील वा अनित्य और चंचल है। यह परिवर्तनशील और चंचल क्यों है? क्योंकि जब आप स्वप्नभूमि में आते हैं, जब आप स्वप्नावस्था में पड़ जाते हैं, वह शून्यता जाती रहती है, वह शून्यता नहीं बाकी रहती। यदि गहरी नींद

की वह अव्यवस्था या शून्यता आप की वास्तविक आत्मा होती, तो वह सदा ज्यों की त्यों रहती। किन्तु वह बदलती है। जब आप स्वप्न-देश में आते हैं, तब बदलने की सामर्थ्य ही से सूचित होता है कि वह असली नहीं है। यह कारण शरीर वास्तविक नहीं है। आप को आश्चर्य होगा, आप कहेंगे कि हमारा यह अद्भुत संसार उस शून्यता से कैसे निकल पड़ा। किंतु यह तथ्य है। यूरोप और अमेरिका में आप लोग दूसरे ही ढंग से इन मामलों पर विचार करते रहे हैं, आप उलटी पुलटी दशा में इन बातों को ग्रहण करते आये हैं। राम पर विश्वास कीजिये, यह वह सच्चाई है, जो प्रत्येक व्यक्ति में जरूर व्यापेगी, जो इस सृष्टि के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में देर या सबेर में जरूर प्रवेश करेगी।

यहाँ लोग पेंदी से चोटी पर अर्थात नीचे से ऊपर चीज़ों को ले जाने के अभ्यासी हैं। वे चाहते हैं कि नदियां नीचे से ऊपर पहाड़ पर उलटी बहकर जाय, जो प्रकृति-नियम-विरुद्ध या अस्वाभाविक है। और इसलिये राम के अभी के कथन पर, कि "आपकी गहरी नींद की शून्यावस्था से आप के स्वप्न लोक का आविर्भाव होता है", आपको आश्चर्य होगा, आप चकित होंगे। किंतु ज़रा जाँच कीजिये वा विचार कीजिए, क्या यह प्रकृति का क्रम नहीं है? आपकी यह पृथ्वी कहाँ से आई? आपकी यह पृथ्वी कभी बादली दशा में या कोहरे की सी दशा में थी। यह सब सृष्टि पहले ऐसी दशा में थी, जिसका कोई आकार न था, जो दशा आपकी गहरी नींद की दशा के तुल्य धुन्धली सी थी। यह आकारहीन दशा में थी, यह ऊटपटांग दशा में थी। उस ऊटपटांग दशा से धीरे धीरे उद्भिज वर्ग की, पशु वर्ग की, और मनुष्य की उत्पत्ति हुई। वेदांत आपको बतलाता है कि, आप सम्पूर्ण प्रकृति में जो कुछ पाते हैं, जो कुछ भौतिक दृष्टि से आप सत्य पाते हैं, वही अध्यात्म दृष्टि से भी सत्य

हैं। यदि, कहने में, यह समस्त संसार ऊटपटाग या शून्य अवस्था से उपजता है, तो आपकी स्वप्न और जाग्रत दशायें भी उसी गहरी नींद की दशा या ऊटपटाग दशा से, अर्थात् शून्य अवस्था की दशा से हुईं। आपकी जाग्रत और स्वप्न दशायें उससे उत्पन्न हुईं। ठीक यही बात प्रत्येक मनुष्य के जीवन में पाई जाती है। मनुष्य जब बच्चा होता है तो वह शून्यता की हालत से बहुत मिलता जुलता है, मानो उस अवस्था से धीरे धीरे वह दूसरी दशाओं में आता है, जिन्हें आप उच्चतर कहते हैं, यद्यपि उच्चतर और निम्नतर सापेक्षक शब्द हैं।

समस्त विश्व में जो नियम है वही नियम हरएक मनुष्य के साधारण जीवन का भी है। सुषुप्ति-अवस्था से यह स्वप्नावस्था पैदा होती है। लोग स्वप्न-अवस्था की व्याख्या इस तरह पर करने की चेष्टा करते हैं, मानो स्वप्नावस्था जाग्रत अवस्था के सहारे है। आप को यह देखकर आश्चर्य होगा कि सिद्धांतों को वेदांत उनके यथार्थ रूप में दर्शाता है और स्पष्ट करता है कि, सब यूरोपीय तत्व ज्ञानी अर्थात् आपके सब हेगेल (Hegels) और कैंट (Kants) स्वप्न के अद्भुत व्यापार को पूरी तरह नहीं समझ सके। आज इस विषय पर कुछ कहने का हमें समय नहीं है। किंतु यह विषय किसी अन्य व्याख्यान में या कोई पुस्तक द्वारा सिद्ध करके आपको दिखाया जायगा।

अब हम स्वप्न-अवस्था पर आते हैं। स्वप्न-लोक में हम मानो हिम-शिलाओं से निचले पहाड़ों पर आते हैं। आप अभी तक पर्वत पर सोये हुए हैं। यहाँ सूक्ष्म-शरीर अर्थात् स्वप्नदर्शी आत्मा अपने आपको एक विचित्र लोक में, अथवा काव्यमय प्रदेश में पाता है। आपका स्वप्नदर्शी आत्मा अभी एक पक्षी है, अभी एक राजा है, तुरन्त वह भिक्षु हो जाता है। अब वह एक ऐसा मनुष्य है, जो

हिमालय पहाड पर अपनी राह भूल गया है। कुछ देर बाद वह लंदन सरीखे बडे नगर का निवासी बन जाता है। अभी वह इस नगर में है और फिर उस नगर में। कैसा परिवर्तनशील है। जिस तरह नदियाँ पहाडों पर परिवर्तनशील, सर्पगति और चञ्चल है, दम बदम इस ओर और उस ओर मुडती रहती हैं, वही दशा तुम्हारे स्वप्नदर्शी आत्मा की है। अपनी स्वप्न-अवस्था में आप सब बात में फुर्ती दिखाते हैं, ठीक उसी तरह जैसे नदियाँ पहाड़ पर फुरतीली होती हैं, जैसे नदी, नाले पर्वत पर अति तेज़, फुरतीले, खिलाड़ी और वेगवान होते हैं। इसी तरह आपका स्वप्नदर्शी आत्मा अति खिलाडी और जल्दबाज है। आप कल्पना के देश में रहते हैं। वहाँ मुर्दे जी उठते हैं, और जिन्दा लोगों को आप कभी कभी मुर्दा पाते हैं। अद्भुत देश है! विचित्रता और काव्य का देश है! क्या यह ठीक सूक्ष्म-शरीर वाली पहाड पर की नदी के समान नहीं है, जहाँ वह विचित्रता और काव्य के देश में होती है? स्वप्न के अनुभव के बाद, मानो पहाड से निकलते हुए आप अपनी दूसरी दशा मे गुज़रते हुए मैदान में आते है। आप जाग पडते हैं। अपनी जाग्रत-अवस्था में आप स्थूल-शरीर गढते हैं, ठीक वैसे जैसे कि नदी को मैदान मे उतरते समय स्थूल-शरीर की जरूरत पडती है। आप समझते हैं कि, गहरी नींद की (सुषुप्ति) अवस्था कारण-शरीर कहलाती है, और आप के स्वप्न-देश का शरीर सूक्ष्म-शरीर कहलाता है, तथा आप की जाग्रत-अवस्था का शरीर स्थूल कहलाता है। आप जानते हैं कि जब नदियाँ पहाडों से उतर कर मैदान में पैर रखती है, उनका सूक्ष्म-शरीर जैसा का तैसा बना रहता है, केवल वह एक लाल या मटियारा ओढ़ना अपने ऊपर ओढ़ लेता है। आप पहाड से आने वाले जल को भी जानते हैं। वह ताज़ा और स्वच्छ जल मट्टी, कीचड़ और मैदान की

धूल में छिपा रहता है। नदी का सूक्ष्म-शरीर जैसा कि वह पहाड़ में देखा गया था, वहाँ (मैदान में आकर) बदला नहीं। उसने केवल नये कपड़े धारण कर लिये है, नई पोशाक पहन ली है। इस तरह नदी जब मैदान में उतरती और नई मटियारी पोशाक पहनती है, हम कहते हैं कि, नदी अपने स्थूल शरीर मे है। जब सूक्ष्म-शरीर कारण शरीर से निकला था तब ऐसा नहीं था। तब कारण-शरीर को पिघलकर सूक्ष्म-शरीर पैदा करना पड़ा था। और जब जाग्रत् दशा में सूक्ष्म-शरीर को पिघलना या बदलना नहीं पड़ता, उसे केवल नये कपड़े, नई पोशाक पहनना पड़ती है। वास्तव में यह घटना होती है।

आप की जाग्रत्-अवस्था में सूक्ष्म-शरीर (दूसरे शब्दों में मन-बुद्धि) जो स्वप्न-देश में काम कर रहा था, गायब नहीं हो जाता, वहीं बना रहता है। किन्तु ये भौतिक तत्त्व, भौतिक सिर तथा और सब भौतिक अंग, उस पर मानो पोशाक की तरह पहन लिये जाते हैं। और जब आप को सोना होता है, यह भौतिक स्थूल-शरीर केवल उतार दिया जाता है, मानो वह किसी खूंटी पर टाँग दिया गया, और सूक्ष्म-शरीर इससे रहित हो गया।

जिस तरह सोते समय लोग अपने कपड़े उतार डालते हैं, उसी तरह आप इसे (स्थूल-शरीर को) उतार डालते हैं, और आप के स्वप्नों में केवल सूक्ष्म-शरीर काम करता है। अच्छा, तो सूक्ष्म-शरीर क्या है? अब यह दिखाया जायगा कि वह सूक्ष्म-शरीर भी भौतिक है। सूक्ष्म और स्थूल का एक दूसरे से सम्बन्ध बताया जायगा। आप जानते हैं कि जाड़े की ऋतु में (जाड़े की ऋतु रात के समान है) नदियाँ आम तौर से अपने स्थूल-शरीर को हटा देती है, अपने को अपने स्थूल-शरीर से रहित कर लेती हैं और केवल अपना सूक्ष्म-शरीर अपने साथ रखती हैं, अर्थात् शीतकाल में नदियों का डील डौल घट जाता है, वे अपना

कीचड, मट्टी और लाल, मटियारा जामा त्याग देती है। वे मानो नींद लेती हैं। जिस तरह नदियाँ अपना स्थूल-शरीर उतार डालती हैं और केवल सूक्ष्म-शरीर ही रखती हैं, ठीक उसी तरह प्रत्येक दिन जब आप रात को सोने लगते हैं (आप का शीत काल), आप स्थूल को उतार डालते और केवल सूक्ष्म शरीर रख लेते है।

किन्तु जो सूर्य कारण-शरीर पर चमक रहा था, वही सूर्य समान भाव से नदी के सूक्ष्म-शरीर पर भी चमकता है, प्रत्येक मनुष्य के सूक्ष्म-शरीर पर समान भाव से चमकता है, जब वह (मनुष्य) स्वप्न-प्रदेश मे होता है। और नदी के कारण तथा सूक्ष्म-शरीरो पर चमकने वाला सूर्य उसके स्थूल शरीर पर भी उसी तरह चमकता है।

शुद्ध आत्मा या वास्तविक स्वरूप, जो गहरी नींद (सुषुप्ति) की दशा के शरीर पर चमकता देखा गया था, आपके स्वप्न-प्रदेश और आपकी जाग्रत्–दशा तथा मानो स्थूल-शरीर पर भी चमकता है। किन्तु भेद क्या है? भेद है सूर्य के प्रतिबिम्ब मे। जब सूर्य नदी के कारण-शरीर वा हिम-शिलाओ पर चमक रहा था, तब उनमे सूर्य की छाया-मूर्ति नही दिखाई देती थी। हिम-शिलाओ पर सूर्य की क्रिया बडी प्रचण्ड थी, किन्तु प्रतिबिम्ब या छाया-मूर्ति नही दिखाई देतो थी। परन्तु नदी के सूक्ष्म-शरीर पर चमकते ही उसका प्रतिबिम्ब पडने लग गया।

जब सूर्य नदी के सूक्ष्म-शरीर पर चमकने लगा, तब सूर्य की छाया-मूर्ति दिखाई देने लगी। हिम-टोपधारी चोटियो या हिम-शिलाओ पर सूर्य की छाया-मूर्ति दिखाई देती, किन्तु नदी के सूक्ष्म-शरीर मे दिखाई देती हैं; अर्थात् पहाडो मे वा नालो मे सूर्य की छाया-मूर्ति दिखाई देती है। यह छाया-मूर्ति क्या सूचित करती है? यह सूचित करती है कि छाया-मूर्ति आपका असली स्वरूप, शुद्ध, निर्विकार और निर्विकल्प

आत्मा, असली ब्रह्म या ईश्वर है। वही ईश्वर आपकी गहरी नींद की दशा में भी आप में वर्तमान है और वही ईश्वर आपके कारण-शरीर पर चमकता है। किन्तु विचार कीजिये, गहरी नींद की दशा में किसी तरह का अहंभाव उपस्थित नहीं है; आप को कोई विचार नहीं होता कि मैं सोया हूँ, मैं बढता हूँ, मै भोजन पचाता हूँ, मै काम करता हूँ। अतः वहाँ (गहरी नींद की दशा मे) किसी प्रकार का अहंभाव नहीं है। वास्तविक आत्मा वहाँ है, किन्तु वहाँ किसी प्रकार का अहङ्कार नहीं है। यह झूठा, देखने मात्र का अहङ्कार, जिसे लोग आत्मा समझते हैं, वहाँ नहीं है। स्वप्न की दशा मे यह प्रकट होता है। स्वप्न-अवस्था नदी की दूसरी अवस्था अर्थात् नदी के सूक्ष्म-शरीर के समान है। उस (स्वप्न की) अवस्था मे यह प्रकट होता है, और जाग्रत दशा मे भी यह प्रकट होता है। आप जानते है कि आपकी जाग्रत्-अवस्था नदी की मैदानी दशा के, अर्थात् नदी के स्थूल-शरीर के तुल्य है। उसमे सूर्य साफ चमक रहा है ; वह हिम-शिलाओं पर भी स्वच्छता से चमक रहा था। किन्तु नदी मे उसकी छाया-मूर्ति प्रतिबिम्बित होती है और गंदली नदी पर भी सूर्य की छाया-मूर्ति दिखाई पडती है। इसी तरह आप की जाग्रत्-अवस्था मे भी सूर्य की छाया-मूर्ति दिखाई पडती है। यह अहंकार—मै यह करता हूँ, मै वह करता हूँ, मैं यह हूँ, मै वह हूँ और यह सब अहंभाव—यह स्वार्थी, देखनेमात्र आत्मा जाग्रत्-अवस्था मे भी अपने को प्रकट करता है। किन्तु आप जानते हैं कि आपकी स्वप्न-अवस्था के अहंकार और आपकी जाग्रत्-अवस्था के अहंकार मे अन्तर है। आपके स्वप्न-जगत् के अहंभाव, जो आपके लिए सच्ची आत्मा या ईश्वर की छाया अथवा प्रतिबिम्ब है, ठीक उसी तरह चञ्चल, परिवर्तनशील, अस्थिर, डॉवाडोल, और धुंधला है जैसे नदी मे जब कि वह पहाडो पर होती है, सूर्य का प्रतिबिम्ब अस्थिर, चचल और परिवर्तनशील

होता है। और आपकी जाग्रत्-अवस्था में यह अहंभाव ऐसे निश्चित और स्थायी है जैसे मन्द धारा में या मन्द नदी में, जब कि वह मैदानों में बहती है।

यहाँ पर कुछ और कहना है। लोग पूछते हैं कि स्थूल-शरीर को सूक्ष्म-शरीर का परिणाम अथवा कार्य (बाद का असर) कहने का आपको क्या हक है? लोग पूछते हैं, स्वप्न-दशा को जाग्रत्-दशा के ऊपर रखने का आपको क्या अधिकार है? इस पर ध्यान दीजिये। जाग्रत्-अवस्था में आपका अनुभव किन पदार्थों का बना हुआ है? आपकी जाग्रत्-अवस्था का अनुभव देश, काल और वस्तु पर टिका हुआ है। क्या आप किसी भी द्रव्य अर्थात् इस संसार की किसी भी वस्तु का विचार उसमें देश, काल, वस्तु आदि की कल्पना डाले बिना कर सकते हैं? कदापि नहीं, कदापि नहीं। देश, काल और वस्तु के बिना आपको किसी भी चीज की धारणा नहीं हो सकती। इनके बिना किसी भी वस्तु की धारणा असम्भव है। देश, काल और वस्तु आपके संसार के ताने और बाने के समान हैं। उन पर ध्यान दीजिये, वे आपके स्वप्न-जगत् में भी हैं और जाग्रत्-अवस्था में भी हैं। आप जानते हैं, मैक्समूलर (Max Muller) ने जर्मन तत्त्ववेत्ता कैंट के "क्रीटिक आफ़ प्योर रीज़न" (Kart's Critique of Pure Reason) नामक पुस्तक के अपने अनुवाद की प्रस्तावना में कहा है कि कैंट भी उसी तत्त्वज्ञान की शिक्षा देता है वेदांत। वे कहते हैं कि कैंट ने साफ़ दिखला दिया है कि देश, काल और वस्तु पहले ही से हैं, और हिंदुओं ने यह नही दिखाया है। राम तुमसे कहना चाहता है कि मैक्समूलर को हिन्दू धर्म-ग्रंथों का काफ़ी ज्ञान नहीं था। राम तुमसे कहना चाहता है कि हिन्दुओं ने भी देश, काल और वस्तु को पहले ही से मौजूद अर्थात् स्वयं कर्त्ता के अन्दर मौजूद सिद्ध किया है। और उसीसे दिखलाया गया

है कि आपकी जाग्रत् अवस्था का अनुभव एक विचार से आपके स्वप्न-अवस्था के अनुभव का उत्तर-कार्य (after effect) है। धैर्य से सुनियेगा। आपकी गाढ निद्रा की अवस्था में आपको काल का कोई बोध नहीं होता, देश का कोई बोध नहीं होता, वस्तु (निमित्त) का कोई बोध नहीं होता। आप स्वप्न-अवस्था मे उतरते है। वहाँ काल प्रकट होता है, देश की उत्पत्ति होती है, और वस्तु की भी। हिन्दू आपसे कहते हैं कि आपके स्वप्न-जगत् के देश, काल और वस्तु उसी तरह आपकी सुषुप्ति-अवस्था से निकलते हैं, जिस तरह बीज से नन्हा अंकुर अपने दुर्बल और अशक्त रूप में निकलता है। फिर आपकी जाग्रत्-अवस्था में देश, काल और वस्तु बढ़कर महान् वृक्ष की दशा में आ जाते है। वे बली होकर और पक कर एक ज़ोरदार नदी की दशा प्राप्त कर लेते है। वे अपना स्थूल रूप धारण करते हैं; ठीक जैसे जैसे तुम बढ़ते हो, वैसे ही वैसे तुम्हारे साथ देश, काल और वस्तु के संकल्प भी बढ़ते हैं यह समझते हुए कि अहंभावी दृष्टा (कर्त्ता) देश, काल और वस्तु के परिणाम के सिवाय और कुछ भी नहीं है, जैसे जैसे ये वृद्धि पाते है, वैसे वैसे वह (अहंभाव) वृद्धि पाता है। आप के स्वप्नों में भी काल होता है; किन्तु अपने स्वप्नों के काल से, अपनी जाग्रत्-दशा के काल की तुलना कीजिये। स्वप्न का काल चंचल, अनिश्चित, धुंधला, अस्पष्ट, अस्थिर और अनियमित है। और जाग्रत्-अवस्था का काल स्वभावतः प्रौढ (पक्के) रूप मे है। राम बतलाता है, आपके स्वप्न-अवस्था के काल से वह काल बलिष्ठ अर्थात् प्रौढ़ तर है। आप जानते हैं, कि स्वप्न में कभी कभी मरे जी उठते और जीते मर जाते है। आपकी जाग्रत्-दशा मे ऐसा नहीं होता। इस दशा में काल निश्चित है। आपके स्वप्न-जगत् में भूतकाल भविष्य हो जाता है और भविष्य भूत हो जाता है। जाग्रत्-अवस्था में ऐसा नहीं होता।

आपने सुना होगा कि हज़रत मोहम्मद को स्वप्न में आठवें आकाश पर चढ़ने में बड़ा समय लगा था। किन्तु जब वे जागे, तो उन्हें मालूम हुआ कि केवल दो पल बीते थे।

इसी तरह आपकी जाग्रत्-दशा की चीज़ें आपके स्वप्न-दशा की चीज़ों से केवल जाति ही में नहीं, किन्तु गाढ़ता और अंशों (परिमाण) में भी भिन्न हैं। आप की स्वप्नावस्था में वस्तुयें विकारवान्, चंचल, अनिश्चित और अस्थिर हैं। वे बदली जा सकती हैं, जिस तरह छोटे पौधे की बाढ़ आप जिस तरफ़ चाहें मोड़ सकते हैं। किन्तु जब वह एक भारी वृक्ष हो जाता है, वह दूसरे रूप में ढाला, मोड़ा या बदला नहीं जा सकता। अपने स्वप्न-जगत् में अभी आप एक नारी देखते हैं, क्षण भर में वह घोड़ी हो जाती है। अभी आप अपने सामने एक जीता मनुष्य पाते हैं और बिना कुछ भी समय बीते वह मुर्दा हो जाता है। अभी आप अपने सामने एक पहाड़ देखते हैं और बात की बात में वह आग बन जाता है। जो चीज़ें आप अपनी स्वप्नावस्था में पाते हैं, वे गहरी नींद की दशा में मौजूद नहीं थीं। गहरी नींद की दशा अर्थात् सुषुप्ति से वे ऐसे निकल पड़ीं, जैसे हिम-शिलाओं से छोटी नदियाँ वा चंचल नाले निकल पड़ते हैं। फिर आपकी जाग्रत्-अवस्था में यही पहले ही से उपस्थित काल और देश परिपक्व होकर कठिन और दृढ़ रूप में आ जाते हैं, निश्चित हो जाते हैं, अपनी एक विशेष दृढ़ता पाते हैं।

आपके स्वप्न-जगत् की बुद्धिमत्ता अर्थात् आपके स्वप्न-जगत् की बुद्धि जाग्रत्-अवस्था से सम्बन्ध रखती है। राम निजी अनुभव से जानता है कि जब वह विद्यार्थी था, तब प्रायः उसने स्वप्न में उन महा-कठिन सवालों को हल कर डाला जिन पर वह विचार करता रहता था। किन्तु जागने पर वह उन्हें न हल कर सका। ओह, तर्क-वितर्क

(प्रश्न लगाने की क्रिया) मे भूल थी। आपके स्वप्न-जगत् के तर्क-वितर्क भी चंचल, विकारवान् किंतु जाग्रत्-दशा मे सम्बन्ध रखने वाले हैं, जिस तरह अधिक बढा हुआ वृक्ष भी चंचल, छोटे से पौधे, परिवर्तनशील कली वा परिवर्तनशील पौधे के सम्बन्धी हैं।

प्राय: राम ने स्वप्न मे कवितायें रचीं। किन्तु जागने पर जब उसने कविता पर दृष्टि डाली, तो वह असम्बद्ध थी, उसकी पंक्तिया (मात्रायें) ठीक न उतरीं। उसमे शृंखला (सिलसिला) का, और एकता का अभाव था। स्वप्न-अवस्था की युक्तिमाला जाग्रत्-दशा की युक्तिमाला से उसी तरह सम्बन्ध रखती है, जिस तरह नदी का सूक्ष्म-शरीर उसके स्थूल-शरीर का सम्बन्धी है ; और आपके स्वप्न-जगत् का देश भी उसी तरह आपकी जाग्रत्-दशा के देश से जुडा हुआ है। (जाग्रत् अवस्था मे) देश दृढ, निरन्तर, अटूट है। अब आप कहेंगे, यह ठीक नहीं। यह क्या बात है कि, हम अपने स्वप्नो मे उन्ही वस्तुओं को देखते है जिनको हम अपनी जाग्रत्-दशा मे देखते हैं। हमारे स्वप्न हमारी जाग्रत्-दशा की केवल स्मृतिया हैं। राम कहता है, इससे क्या होता है? यही सही। बीज क्या है? बीज से सुंदर छोटा पौधा निकलता है, वह परिवर्तनशील, लोचदार है। इस परिवर्तनशील, लचकदार छोटे पौवे से बडा भारी, बलवान् वा कठोर वृक्ष उगता या बढ़ता है। बहुत ठीक। पुनः इस दृढ वृक्ष से कुछ और बीज प्राप्त होते हैं; वैसे ही बीज, जैसो ने इस वृक्ष को उपजाया था। अब ये बीज पूरे वृक्ष को अपने मे धारण किये हुए हैं। वृक्ष ने अपना सारा साराश और सारी शक्ति उलट कर फिर बीजो मे रखदी। तो क्या हमे यह तर्क करना चाहिए कि वृक्ष बीज से नहीं निकला था? क्या यह तर्क करने का हमें अधिकार है कि वृक्ष बीज से नहीं निकला? नहीं, नहीं; ऐसी बहस करने का हमे कोई अधिकार नहीं है।

इसी तरह वेदान्त कहता है कि सुषुप्ति, जिसे राम आपकी बीज-अवस्था कहता है, यह गहरी नींद की दशा बीज के समान है। उसीसे स्वप्न-अवस्था आती है और उसीसे जाग्रत्-अवस्था में स्थूल-शरीर मानो प्रकट होता या बढ़ता है। अब आपका जाग्रत्-अनुभव यदि फिर लौटाकर आप की नींद में जमाया अर्थात् घनीभूत किया जा सकता है, तो यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यदि आपका जाग्रत्-अनुभव जमाया जा सकता है, आपकी स्वप्न-अवस्था में अर्थात् आपके स्वप्न-जगत् के अनुभव में लौटाया जा सकता है, तो इससे राम के बयान का खण्डन नहीं होता। ऐसा ही सही। फिर भी उससे आप यह कहने के अधिकारी नहीं हो जाते कि आपकी जाग्रत्-दशा आपके सूक्ष्म-शरीर या स्वप्न-देश में विकसित नहीं हुई थी। आप ऐसा कहने के अधिकारी नहीं हैं; ठीक उसी तरह, जिस तरह कि सारा वृक्ष बीज में जमा कर रख दिये जाने से हम यह कहने के अधिकारी नहीं हो जाते कि वृक्ष बीज से नहीं पैदा हुआ था। यदि आपको अपने स्वप्नों में साधारणतया अपनी जाग्रत्-दशा की स्मृतियां आती हैं, तो उससे आप राम के इस कथन को नकारने के अधिकारी नहीं हो जाते कि, देश, काल और वस्तु से ही अर्थात् स्वप्न-अवस्था के रूपान्तर या स्वप्नावस्था के अनुभव से ही जाग्रत्-दशा का अनुभव विकसित होता या बढ़ता है।

वेदान्त दर्शन कहता है, स्वप्न-अवस्था या जाग्रत्-अनुभव का जन्म आपकी गहरी नींद की अंधकार अथवा शून्यता से हुआ था। संसार कुछ नहीं है, या संसार अविद्या का नतीजा है, हिन्दुओं के इस कथन का अभिप्राय आपकी सुषुप्ति अवस्था है जिसमें अव्यवस्था या शून्यता विराजी होती है। आपकी गहरी नींद की दशा भी एक प्रकार की शून्यता या अव्यवस्था, अविद्या, जमी हुई (घनीभूत) अविद्या है। यदि आप उसे ठीक अविद्या कहना चाहते हैं, तो गहरी नींद की

दशा ठीक अविद्या है और उसी अज्ञानता या अन्धकार से यह संसार, यह सारा भेदभाव और विकार प्रकट होता है, और वह अविद्या परिवर्तनशील है। आप जानते है कि स्वप्न-अवस्था मे आप दो तरह की वस्तु देखते हे, कर्त्ता और कर्म (subject and object)। वेदान्त के अनुसार कर्त्ता और कर्म साथ साथ आविर्भूत होते है। अपने स्वप्नो मे आप एक ओर तो देखने वाले (द्रष्टा) होते है और दूसरी ओर देखी जाने वाली चीज़ (दृश्य) बनते है। यदि स्वप्न मे आप एक घोडा और उसका सवार देखते है, तो दोनो साथ ही दिखाई पडते है। यदि आप स्वप्न मे पहाड देखते है, तो पहाड एक कर्म है और आप द्रष्टा या देखनेवाले अर्थात् कर्ता है। वहाँ कर्ता और कर्म साथ ही प्रकट हो आते है। वहॉ स्वप्न-जगत् मे एक प्रकार के काल के द्वारा स्वप्न का भूत और भविष्य भी एक साथ पदार्थ का संगी हो जाता है। स्वप्न का भूत, वर्तमान और भविष्य काल, स्वप्न की अनन्तता, स्वप्न की वस्तु और स्वप्न के कर्ता तथा कर्म, ये सब के सब एक साथ ही प्रकट हो जाते है।

इसी तरह, वेदान्त कहता है, अपनी जाग्रत्-दशा मे भी आप ही देखी जाने वाली वस्तु हैं और देखने वाले भी। एक ओर तो आप मित्र और शत्रु हैं और दूसरी ओर देखने वाले है। एक ओर आप शत्रु है और दूसरी ओर आप मित्र है, आप सब कुछ है। किन्तु स्वप्न की ये सब अद्भुत घटनाये, सुषुप्ति की ये आश्चर्य घटनाये और जाग्रत्-दशा के चमत्कार, ये सब के सब व्यापार विकारवान, अनित्य, चंचल, अस्थिर और अनिश्चित है। वास्तविक स्वरूप, जिसकी सूर्य से तुलना की गई थी, अर्थात् असली आत्मा, तीनो शरीरो पर उसी तरह चमकता है, जिस तरह सूर्य नदी के तीनो शरीरो पर चमकता है। आत्मा नित्य, निर्विकार है। वह आत्मा या सूर्य आपकी सुषुप्ति-दशा की हिम-

शिला पर चमकता है। आपकी आत्मा या सूर्य से आपका जाग्रत्-अनुभव प्रकाशित होता है। और आप यह भी देखते है कि सूर्य केवल एक नदी के तीनों शरीरों पर ही नहीं चमकता है, किन्तु वही सूर्य ठीक उसी तरह संसार की सभी नदियों के तीनों शरीरों पर प्रकाश डालता है। इसी तरह, इस नदी का शरीर यदि उस नदी के शरीर से भिन्न है तो क्या हुआ? यदि इस जीवन की नदी उस जीवन की नदी से दूसरी तरह पर बहती है, तो क्या हुआ? किन्तु जीवन की इन सब नदियों पर, अस्तित्व की इन सब धाराओं पर वही नित्य, निर्विकार, निरन्तर आत्मा, या सूर्यों का सूर्य सब कालों मे, सब अवस्थाओं मे, निर्विकार, अपरिवर्तनीय चमक रहा है। वही तुम हो, वही तुम हो। वही आपका वास्तविक स्वरूप है। और आपका वास्तविक स्वरूप आपके मित्र का वास्तविक स्वरूप है, बल्कि हर एक का और सब का वास्तविक स्वरूप है। आपकी वास्तविक आत्मा केवल जाग्रत्-दशा मे ही आपके साथ उपस्थित नहीं है, वह समान भाव से गहरी नींद की दशा मे भी वर्तमान है, वह समान भाव से सब प्रकार की अवस्थाओं और विकारों मे भी मौजूद है।

अनुभव करो कि वास्तविक आत्मा सारी चिन्ता, सारे भय से परे है, सब मुसीबतों और दुखों से दूर है। कोई आपको हानि नहीं पहुँचा सकता, कोई आपको चोट नहीं पहुँचा सकता।

Break, break, break, at the feet of thy crags, oh sea,
Break, break, break, at my feet, oh world that be.
Oh suns and storms, O earthquakes, wars,
Hail, welcome, come, try all your force on me!
Ye nice torpedoes, fire! my play things, crack!
Oh shooting stars, my arrows, fly!

You burning fire ! can you consume ?
O threatening one, you flame from me .
You flaming sword, you common ball,
My energy headlong drives forth thee !
The body dissolved is cast to winds,
Well doth Infinity me enshrine !
All ears, my ears , all eyes, my eyes ,
All hands, my hands , all minds, my minds !
I swallowed up death, all difference I drank up ;
How sweet and strong a food I find !
No fear, no grief, no hankering pain ,
All, all delight, or sun or rain !
Ignorance, darkness, quaked and quivered,
Trembled, shivered, vanished, for ever ;
My dazzling light did parch and scorch it.
Joy ineffable ! Hurrah ! Hurrah !

टूट, टूट जा टूट, सिंधु ! अपने कगार के चरणों पर,
टूट, टूट जा टूट, जगत ! तू आकर मेरे चरणों पर ।
ऐ सूर्यो ! ऐ प्रबल वात्य ! ऐ भूकंपो ! ऐ समर महान !
नमस्कार । स्वागत । मुझ पर अज़माओ अपनी शक्ति सुजान ।
तू सुन्दर पनडुब्बी नौका, अग्नि ! खेल की मेरी वस्तु,
दरको ! ऐ टूटते सितारो, मेरे बाणो, छूटो ! अस्तु ।
तू प्रज्वलित अग्नि ! कर सकती है क्या मुझको भस्मीभूत ?
तू मुझसे, धमकानेवाली ! होती है प्रज्वलती भूत ।
तू लपकती कृपाण तथा तू गेंद ज़रा सी अति सामान्य,
मेरी शक्ति हँकाती तुझको अधाधुंध कर तेरा मान्य ।
छिन्न-भिन्न यह देह पवन मे फेक दिया जब जाता है ,

अनन्तता ही तब फिर मेरा मुख्यालय बन जाता है।
हैं सब कान, कान मेरे ; सब नेत्र, नेत्र मेरे ही हैं ;
हाथ सकल हैं कर मेरे ; मन सारे, मन मेरे ही हैं।
निगल गया मैं मृत्यु, भेद भी गया पान कर मैं मारा ;
कैसा मधुर सुपुष्ट सुभोजन पाता हूँ मैं बिन-मारा।
भीत न कोई, शोक न कोई ; नहीं लालसा की पीडा ;
अखिल, अखिल आनन्द, सूर्य या वृष्टि करे नित ही कीडा।
ज्ञानशून्यता, अंधकार, हैं व्याकुल औ अति हिले हुए,
काँपे, औ थर्राए, गायब हुए, सदा के लिए मुए।
मेरी इस जगमगी ज्योति ने उसे झुलस औ भून दिया,
अमितानद अहाहाहा ! मैं ! वाह ! वाह !! क्या ख़ूब किया !!!

ॐ !　　　ॐ !!　　　ॐ !!!

वास्तविक आत्मा

——:०:——

ता० ७ जनवरी १९०३ को अमेरिका के सैन फ्रांसिस्को के गोल्डेन-गेट हाल में दिया हुआ व्याख्यान।

——:०:——

भद्र पुरुषों और महिलाओं के रूप में सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर !

एक जर्मन कथा के अनुसार एक मनुष्य ने अपनी प्रतिच्छाया खो दी थी। यह बड़ी ही विचित्र बात है। एक मनुष्य ने अपनी छाया खो दी और उसके पीछे उसे हानि उठानी पड़ी। उसके सब मित्रों ने उसे तज दिया। सम्पूर्ण सम्पत्ति ने उसे छोड़ दिया, और वह इसके कारण बड़ी विपत्ति में पड़ गया। छाया खोने के बदले जिस मनुष्य ने अपना साराश खो दिया हो उसके लिए आप क्या विचार करेंगे? जो मनुष्य केवल अपनी छाया खो बैठा है उसके उद्धार की आशा तो हो सकती है, किन्तु जो अपना वास्तविक साराश अर्थात् शरीर खो बैठे उसके लिए कौनसी आशा हो सकती है?

इस संसार में अधिकाश मनुष्यों की यही गति है। अधिकाश मनुष्यों ने अपनी छाया नहीं किन्तु अपना साराश या अपनी वास्तविकता खो दी है। अचम्भों का अचम्भा! शरीर छाया मात्र है, आपका वास्तविक स्वरूप अर्थात् वास्तविक आत्मा ही आप की वास्तविकता है। हरएक मनुष्य हम से

अपनी छाया की चर्चा करेगा; हरएक पुरुष अपने शरीर से सम्बन्धित अति तुच्छ से तुच्छ बात बतावेगा; किन्तु अपने वास्तविक स्वरूप, अर्थात् वास्तविक तत्त्व या वास्तविक आत्मा सम्बन्धी कुछ भी अथवा किंचिन्मात्र बात बताने वाले कितने थोड़े आदमी है। तुम कौन हो? यदि तुमने अपनी आत्मा ही खो दी, तो सारे संसार की प्राप्ति मे क्या लाभ? लोग सम्पूर्ण संसार के पाने की चेष्टा कर रहे है, परन्तु वे जीवात्मा से अर्थात् आत्मा से रहित हो रहे हैं। खोगया, खोगया; खोगया। क्या खो गया? घोड़ा या घोड़सवार? घोड़सवार खो गया। शरीर घोड़े के सदृश है और आत्मा अर्थात् सच्चा स्वरूप या जीवात्मा घोड़सवार के तुल्य है। घोड़ा तो है, घोड़सवार खो गया। हरएक मनुष्य घोड़े के विषय मे हम से किंचित् या सब कुछ कह सकता है, परन्तु सवार, घोड़सवार, घोड़े के मालिक के सम्बन्ध मे हम कुछ जानना चाहते है। आज रात हमारा यह जानने का विचार है कि सवार, घोड़सवार वास्तविक स्वरूप या आत्मा क्या वस्तु है। यह गम्भीर विषय है। यह वह विषय है जिसके सम्बन्ध मे संसार के तत्त्ववेत्ता अपने दिमाग को छानते रहे है, जिस पर प्रत्येक ने और सब ने भरसक (यथाशक्ति) प्रयत्न किया है। यह गहरा विषय है, और इस घण्टे भर या कुछ कम ज़्यादा समय में इस विषय पर उचित विचार आप नहीं कर सकते। फिर भी एक कथा या उदाहरण के द्वारा हम इसे यथासम्भव सरल बनाने का उद्योग करेंगे।

एक बार यह विषय १५ या १६ वर्ष के एक लड़के को समझाया गया था और थोड़े ही समय मे उसने पूरी तरह से समझ लिया था। यदि वह १५ या १६ वर्ष का लड़का समझ गया था, तो आप सब तथा आपमे से हर एक इस विषय को भली भाँति समझ लेंगे, यदि आप एकाग्र होकर सुनेंगे वा पूरा ध्यान देंगे। उस लड़के को समझाने मे जिस ढंग से काम लिया गया था, आज भी उसी का प्रयोग किया जायगा।

एक बार एक भारतीय राजा का पुत्र राम के पास पहाड़ो पर आया, और यह प्रश्न किया, "स्वामी जी ! स्वामी जी ! ईश्वर क्या है ?" यह जटिल प्रश्न है, बडा कठिन सवाल है। सकल धर्म-कर्म और अध्यात्म-शास्त्र इसी एक विषय के अनुसन्धान मे रत है, और तुम ज़रा सी देर मे इसे पूरी तरह जान लेना चाहते हो। उसने कहा, "हॉ स्वामीजी ! हॉ महाराज ! और किससे मै यह समझने जाऊॅ। मुझे समझा दीजिये।" लडके से प्रश्न किया गया, "प्यारे राजकुमार ! तुम जानना चाहते हो, ईश्वर क्या वस्तु है, तुम ईश्वर से परिचित होना चाहते हो ; परन्तु क्या तुम यह नियम नही जानते कि किसी महापुरुष से जब कोई मनुष्य भेंट करने की इच्छा करता है, तो पहले उसे अपना परिचय-पत्र (कार्ड) भेजना पडता है, उसे अपना नाम-धाम भेजना पडता है ? तुम ईश्वर से मिलना चाहते हो। उचित होगा कि अपना परिचय-पत्र ईश्वर को भेजो, अपनी हुलिया ईश्वर को बतलाओ। अपना परिचय-पत्र उसे दो। मै साक्षात् ईश्वर के हाथ मे उसे रख दूॅगा, और ईश्वर तुम्हारे पास आ जायगा, तथा ईश्वर क्या है, तुम देख लोगे।" लडके ने कहा, "यह बहुत ठीक है, उचित बात है। मै कौन हूॅ, आप को अभी जताता हूॅ। मै उत्तर-भारत मे हिमालय पर रहने वाले अमुक राजा का पुत्र हूॅ। यह मेरा नाम है।" एक पर्चे पर उसने ये नाम-धाम लिख दिया। राम ने पर्चा ले लिया और पढा। पर वह तुरन्त ईश्वर के हाथ मे न रखा गया। और उसी राजकुमार को लौटा दिया गया। उससे कहा गया, "अरे राजकुमार ! तुम नहीं जानते कि तुम कौन हो। तुम उस निरक्षर, अज्ञानी आदमी के समान हो, जो तुम्हारे पिता अर्थात् राजा से मिलना चाहता है और अपना नाम तक नहीं लिख सकता। क्या तुम्हारा पिता अर्थात् राजा उससे मिलेगा ? राजकुमार ! तुम अपना नाम नहीं लिख सकते। ईश्वर तुम से कैसे मिलेगा ? पहले हमे

ठीक ठीक बताओ कि तुम कौन हो, और तब ईश्वर तुम्हारे पास आयेगा और खुले चित्त से तुम से भेंट करेगा।

लड़के ने सोचा। वह इस विषय पर चिंतन करने लगा। उसने कहा, "स्वामिन्! स्वामिन्! अब मैं समझा, अब मैं समझा। मैंने अपना ही नाम लिखने में भूल की थी। मैंने केवल शरीर का पता आपको बताया, और कागज़ पर यह नहीं लिखा कि मैं कौन हूँ।"

पास ही राजकुमार का एक अनुचर खड़ा हुआ था। अनुचर इसे नहीं समझ सका! अब राजकुमार से कहा गया कि तुम अपना अभिप्राय अनुचर को साफ साफ बताओ, और कुमार ने उस अनुचर से यह प्रश्न किया.—"अमुकामुक महाशय!" यह परिचय-पत्र (कार्ड) किसका है?" उस मनुष्य ने कहा, "मेरा।" तब अनुचर के हाथ की छड़ी लेकर कुमार ने उससे पूछा, "ओ अमुकामुक महाशय! यह छड़ी किसकी है?" मनुष्य बोला, "मेरी।" अच्छा, तुम्हारे सिर पर यह पगड़ी किसकी है? मनुष्य ने कहा, "मेरी।" कुमार ने कहा, "बहुत ठीक! यदि पगड़ी तुम्हारी है, तो तुम्हारा पगड़ी से एक सम्बन्ध है; पगड़ी तुम्हारा माल है, और तुम मालिक हो। तब तुम पगड़ी नहीं हो, पगड़ी तुम्हारी है।" उसने कहा, "बेशक, यह तो साफ ही है।" "अच्छा, पेंसिल तुम्हारी चीज़ है, पेंसिल तुम्हारी ही है, पर तुम पेंसिल नहीं हो।" उसने कहा, "मैं पेंसिल नहीं हूँ, क्योंकि पेंसिल मेरी है, वह मेरी सम्पत्ति है, मैं स्वामी हूँ।" बहुत ठीक! तब कुमार ने उस अनुचर के कान हाथ से पकड़कर उसीसे पूछा, "ये कान किसके हैं?" और अनुचर ने कहा, "मेरे।" कुमार ने कहा, "बहुत ठीक! कान तुम्हारी वस्तु हैं, कान तुम्हारे हैं, परिणाम यह हुआ कि तुम कान नहीं हो। बहुत ठीक! नाक तुम्हारी सम्पत्ति है, नाक तुम्हारी है। इसलिए तुम नाक नहीं हो। इसी तरह, (अनुचर के शरीर की ओर

संकेत करते हुए) वह शरीर किस का है ? अनुचर ने कहा, "शरीर मेरा है, यह शरीर मेरा है।" अनुचर जी ! यदि देह तुम्हारी है, तो तुम देह नहीं हो ; तुम देह नहीं हो सकते, क्योंकि तुम कहते हो, कि देह मेरी है। तुम देह नहीं हो सकते। मेरा शरीर, मेरे कान, मेरा सिर, मेरा हाथ, यही बयान सिद्ध करता है कि तुम कोई दूसरी वस्तु हो ; और हाथ, कान, नेत्र इत्यादि के सहित शरीर कोई दूसरी ही वस्तु है। यह तुम्हारा माल है, तुम मालिक हो, तुम स्वामी हो शरीर तुम्हारी पोशाक के तुल्य है, और तुम मालिक हो ! शरीर तुम्हारे घोड़े के समान है और तुम इसके सवार हो। फिर तुम क्या हो ? अनुचर इतनी दूर तक तो समझ गया और कुमार के इस कथन मे सहमत हुआ कि अपना पता बताने के अभिप्राय से जब उन्होंने (कुमार ने) कागज़ पर अपने शरीर का पता लिख दिया था, तब वे गलती पर थे। तुम न शरीर हो, न कान हो, न नाक हो, न नेत्र हो, यह सब कुछ भी नहीं हो। तब फिर तुम हो क्या ? अब कुमार विचारने लगा और बोला—"ठीक, मैं मन हूँ, मैं मन हूँ, अवश्य मैं मन हूँ।" अब उस कुमार से पूछा गया, "क्या वास्तव मे ऐसा ही है ?"

अच्छा, क्या तुम मुझे बता सकते हो कि तुम्हारे शरीर मे कितनी हड्डियाँ हैं ? क्या बता सकते हो कि आज सबेरे तुमने जो भोजन किया था, वह तुम्हारे शरीर मे कहाँ पर रक्खा है ? कुमार कोई उत्तर नहीं दे सका और उसके मुँह से ये शब्द निकल पड़े, "जी, मेरी बुद्धि वहाँ तक नहीं पहुँचती। मैंने यह नहीं पढ़ा है। मैंने शारीरिक या प्राणविद्या अभी तक नहीं पढ़ी है। मेरी बुद्धि इसे नहीं समझ सकती, मेरे मस्तिष्क मे यह नहीं समाता, मेरा मन इसकी धारणा नहीं कर सकता।"

अब कुमार से पूछा गया, "प्यारे कुमार ! ऐ प्रिय बालक ! तुम

कहते हो, मेरा मन इसे नहीं धारण कर सकता, मेरी बुद्धि वहाँ तक नहीं पहुँचती, मेरा मस्तिष्क इसे नहीं समझ सकता। ऐसी बातें कह कर तुम स्वीकार करते हो कि मस्तिष्क तुम्हारा है, मन तुम्हारा है, बुद्धि तुम्हारी है। अच्छा, यदि बुद्धि तुम्हारी है तो तुम बुद्धि नहीं हो। यदि मन तुम्हारा है तो तुम मन नहीं हो। यदि दिमाग़ तुम्हारा है तो तुम दिमाग नहीं हो। तुम्हारे इन्हीं शब्दों से प्रकट होता है, कि तुम बुद्धि के प्रभु हो, दिमाग के मालिक हो, और मन के शासक हो। जब तुम मन, बुद्धि या मस्तिष्क नहीं हो। तो तुम क्या हो? कृपा करके विचारो, ख़ूब विचारो, और सावधानी से हमें ठीक ठीक बताओ कि तुम क्या हो। तभी ईश्वर ठीक तुम्हारे पास लाया जायगा, तुम ईश्वर को देखोगे, तुम सीधे ईश्वर के सामने पहुँचा दिये जाओगे। दया करके हमें बताओ कि तुम कौन हो।"

लड़का सोचने लगा, विचारने लगा, पुनः पुनः विचारने लगा, परन्तु और आगे न जा सका। उसने कहा, "मेरा मन, मेरी बुद्धि और आगे नहीं जा सकते"।

ओ! ये शब्द कैसे सच्चे हैं। सचमुच मन या बुद्धि अन्तरस्थ सच्चे ईश्वर या देव तक नहीं पहुँच सकती। सच्ची आत्मा, सच्चा ईश्वर शब्द और मन की पहुँच से परे है।

लड़के से कहा गया कि अब तक तुम्हारी बुद्धि जहाँ तक पहुँची है कुछ देर बैठ कर उस पर विचार करो। "मैं शरीर नहीं हूँ। मैं मन नहीं हूँ।" यदि ऐसा है तो इसे भान (महसूस) करो, इसे अमल में लाओ; बोध की भाषा में, कार्य की भाषा में इसकी आवृत्तियाँ करो; अनुभव करो कि तुम शरीर नहीं हो। यदि इस विचार के अनुकूल अपना जीवन बना दो, यदि सत्य के इतने ही अंश को व्यवहार में तुम ले आओ, यदि तुम शरीर और मन से ऊपर उठ जाओ, तो सब चिन्ता

और भय से तुम छूट जाते हो। शरीर और मन की कोटि से अपने को ऊँचा करते ही तुम्हें भय छोड देता है। समस्त चिन्ता दूर हो जाती है, सब रंज भाग जाता है, यदि तुम सत्य के इतने ही अंश का अनुभव करते हो कि तुम शरीर और मन से परे कोई अन्य वस्तु हो।

इसके बाद बालक को यह जानने मे कुछ सहायता दी गई कि वह स्वयम् क्या है, और उससे पूछा गया, "भाई राजकुमार! आज तुमने क्या काम किया है? क्या कृपापूर्वक हमे बताओगे कि आज सबेरे आपने कौन कौन से काम किये है?"

वह वर्णन करने लगा, "मै प्रात.काल जागा, स्नान किया, और अमुक अमुक काम किया, भोजन किया, बहुत कुछ पढ़ा, कुछ चिट्ठियाँ लिखी, कुछ मित्रो से मिलने गया, कुछ मित्रो से अपने घर पर भेट की और यहाँ आप (स्वामी जी) के दर्शन करने आया"।

अब कुमार से प्रश्न किया गया, "बस, यही? क्या तुम ने और बहुत कुछ काम नहीं किया? केवल इतना ही? जरा सोचो"। उसने बार बार विचार किया और फिर इसी तरह के कुछ और काम बताये। राम ने कहा "इतना ही सब कुछ नहीं है। तुमने सैकडो, हज़ारो, बल्कि लाखो और काम किये हैं। अगणित काम तुमने किये है, और उन्हे बताना तुम अस्वीकार करते हो। यह उचित नही है। तुमने जो कुछ किया हो, कृपया हमे बता दो। आज सबेरे तुमने जो कुछ किया हो हमे सब बता दो"।

ऐसी अद्भुत बात सुन कर कि बताये हुए कामो के सिवाय और भी हज़ारो काम उसने किये है, कुमार चकित हुआ। "महाराज! मैंने आप से जो कुछ बताया है उसके सिवाय कुछ नही किया, वास्तव मे कुछ नही किया"। नही, तुमने करोडो, अरबो, संखो बातें और की है। सो कैसे?

लडके से पूछा गया, "स्वामी जी की ओर इस समय कौन देख रहा है ?" उसने कहा, "मैं"। क्या तुम यह चेहरा, यह गङ्गा नदी, जो हम लोगों के निकट बह रही है, देख रहे हो ? उसने कहा, "हाँ, बेशक"। अच्छा, तुम नदी देखते और स्वामीजी का मुखमण्डल देखते हो, किन्तु नेत्रों की छः नसों को कौन चला रहा है ? तुम जानते हो कि जब हम देखते हैं, तो आँखो की छः नसें डोलती है ? यह किसी दूसरे का काम नहीं हो सकता, यह कोई अतिरिक्त वस्तु नहीं हो सकती। देखने के कार्य में अवश्य आप का ही अपना आप होगा जो आँखो की नसों को डोलाता है।

लडके ने कहा, "ओह, अवश्य यह मेरा ही काम हो सकता है, कोई दूसरी वस्तु नही हो सकती"।

अच्छा, इस समय देख कौन रहा है, इस भाषण को सुन कौन रहा है ? लडके ने कहा, "मै, मै"। अच्छा, यदि तुम देख रहे हो, यदि तुम यह उपदेश सुन रहे हो, तो वक्तृत्व-शक्ति-वाली नसो को कोन फडका रहा है ? तुम्ही, तुम्ही होगे। दूसरा कोई नही। आज सबेरे भोजन किस ने किया था ? लडके ने कहा, "मैने, मैने"। अच्छा, यदि तुमने आज सबेरे भोजन किया था, और तुम्ही कल टट्टी जाकर उसे निकाल दोगे, तो भोजन को पचाता और एकरस कौन करता है ? वह कौन है, कृपया बताइये, हमें बताइये ? यदि तुमने भोजन खाया था और निकाल दिया था, तो उसे पचाने और एकरस करनेवाले भी तुम्हीं हो सकते हो, दूसरा कोई नहीं हो सकता। वे दिन गये जब किसी प्राकृतिक चमत्कार की व्याख्या के लिए बाहरी कारणो की खोज की जाती थी। यदि कोई मनुष्य गिर जाता था, उसके गिरने का कारण कोई बाहरी प्रेत बताया जाता था। शङ्का के ऐसे समाधानो को विज्ञान-शास्त्र नही मानता। विज्ञान और तत्त्व-शास्त्र

आर मे कहते है कि घटना का कारण स्वयम् घटना मे ही ढूँढो।

तुम भोजन करते हो, टट्टी जाते हो और उसे निकाल बाहर करते हो। जब वह पचता है, तो अवश्य तुम्ही उसके पचाने वाले होते हो, कोई बाहरी शक्ति आकर उसे नहीं पचाती, वह तुम्हारा अपना आप ही होना चाहिए। पाचन का कारण भी तुम्हारे ही भीतर खोजना होगा, न कि तुम से बाहर।

अच्छा, लडके ने यहाँ तक स्वीकार किया। अब उससे प्रश्न हुआ, "प्यारे कुमार! ज़रा सोचो, थोडी देर के लिए विचार करो। पाचन क्रिया के अन्दर सैकडो गतियाँ होती है। पाचन क्रिया मे, चबाने मे, मुख मे गिलटियो (glands) मे राल निकलती है। दूसरे स्थान मे गलाने (oxidation) की दूसरी क्रिया हो रही है। यहाँ रक्त बन रहा है, यहाँ नाडियो मे रक्त-संचरण हो रहा है। यहाँ वही भोजन शरीर के पट्ठो (muscles, स्नायु) नसो, हड्डियो और बालो मे बदला जा रहा है। यहा शरीर मे वृद्धि की क्रिया हो रही है। यहाँ बहुत सी कियाये हो रही हैं, और शरीर के भीतर की इन सब क्रियाओ का सम्बन्ध पाचन और परिपाक की क्रिया से है।

यदि तुम भोजन करते हो, तो साँस लेने का कारण भी तुम्ही हो, तुम्ही अपनी नाडियो मे रक्त के सञ्चारक हो, तुम्ही बाल उगाते हो; तुम्ही शरीर की वृद्धि करते हो। और अब ध्यान दो कि कितने कार्य, कितनी क्रियाये तुम हर क्षण करते रहते हो।

लडका बारंबार सोचने लगा और बोला, "वस्तुतः, महाराज जी! मेरे शरीर मे, अर्थात् इस शरीर मे हज़ारो क्रियाये हो रही हैं, जिनको बुद्धि नहीं जानती, मन जिनसे बेखबर है, और फिर भी वे हो रही हैं। और इन सब का कारण अवश्य मै ही हो सकता हूँ। इन सब का कर्त्ता

मै ही हूं और निस्सन्देह मेरा यह कहना ग़लत था कि मैने कुछ ही काम किये है, इनसे अतिरिक्त और नही किये, अर्थात् वही कुछ काम किये; जो मेरी बुद्धि के द्वारा हुए थे।

इसे और भी साफ कर देना चाहिए। तुम्हारे इस शरीर मे दो प्रकार के काम हो रहे है, दो तरह के कार्य हो रहे है; एक अपनी इच्छा से, और दूसरे अनिच्छा से। अपनी इच्छा से किये हुए काम वे है जो बुद्धि और मन के द्वारा होते है। उदाहरण के लिए:—लिखना, पढना, चलना, बातचीत करना, खाना-पीना, ये कार्य बुद्धि और मन के द्वारा किये जाते है। इसके सिवाय हज़ारो क्रियाये और कार्य ऐसे हो सकते है कि जो सीधे सीधे किये जा रहे है और जिनमे मन या बुद्धि की आढ़त (agency) या माध्यम (medium) की आवश्यकता नही। उदाहरण के लिए:—साँस लेना, नाडियो मे रक्त का सञ्चारण; बालो का बढ़ना, इत्यादि।

लोग यह भूल, बल्कि बडी भूल करते है कि केवल उन्ही कार्मो को अपने किये हुए मानते है, जो मन या बुद्धि की आढ़त द्वारा होते है। अन्य सब करतूते और कार्य, जो बुद्धि या मन की आढ़त के बिना सीधे सीधे हो रहे है, उन्हे वे बिलकुल अस्वीकार कर देते है। उन्हे वे पूरी तरह से परे हटा देते है। उनकी वे नितान्त परवाह नही करते। और इस भूल तथा लापरवाही से अपने शुद्ध स्वरूप को इस तरह छोटे से मन मे कैद करने अथवा अनन्त को छोटे से दिमाग के साथ अभेद करने से लोग अपने को दुखिया और अभागा बना रहे है। वे कहते है, "ओह, ईश्वर हमारे भीतर है"। बहुत अच्छा, स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे भीतर है, ईश्वर तुम्हारे भीतर है, किन्तु वह सार पदार्थ (kernel), जो तुम्हारे भीतर है, वह सार पदार्थ (गूदा) तुम स्वयं हो, न कि ऊपर का खोल (छिलका)। दया करके इस पर गम्भीरता से

विचार कीजिये। विचार, कि तुम गूदा हो या छिलका ? क्या तुम वह हो, जो भीतर है, या वह जो बाहरी छिलका है ?

कुछ लोग कहते है, "अजी ! मै खाता हूँ और प्रकृति पचाती है ; अजी ! मै देखता हूं किन्तु प्रकृति नसो को चलाती है ; अजी ! मै सुनता हूँ किन्तु नसो को प्रकृति कंपाती है।" न्याय, सच्चाई और स्वाधीनता के नाम पर ज़रा विचारिये तो कि आप यह प्रकृति हैं या केवल शरीर ? समझ रखिये, आप वह प्रकृति है। आप अनन्त ईश्वर है। यदि पूर्व-निश्चयो को हटाकर, सब पूर्व-धारणाओ को दूर कर, और अन्धे विश्वासो को त्याग कर आप इस बात पर चिंतन करें, इसका पता लगावें, इसकी परीक्षा करें, और इसको छानबीन करें, तो आपका भी वही विचार हो जायगा, जो प्रकृति के उस रूप का जिसे आप राम कहते हैं। आप देखेंगे कि आप गूदा या सार हैं, प्रकृति हैं, अर्थात् आप संपूर्ण प्रकृति हैं।

आप मे से बहुतो ने इस तर्क का अभिप्राय समझ लिया होगा। किन्तु वह लडका, भारतीय राजकुमार इसे भलीभाँति नहीं समझा। उसने कहा, "भला, यहाँ तक तो मै समझ गया कि मै बुद्धि से परे कोई वस्तु हूँ।" इसी समय कुमार के अनुचर ने प्रश्न किया, "महाराज ! मुझे जरा और अच्छी तरह समझा दीजिये, मै अभी नहीं समझा हूँ।" तब उस अनुचर से पूछा गया, "हे अमुकामुक प्यारे ! जब तुम सो जाते हो, तब जीते रहते हो या मर जाते हो।" उसने उत्तर दिया, "जीता रहता हूँ, मै मर नहीं जाता।" और बुद्धि का क्या हाल होता है ! उसने कहा, मै स्वप्न देखता रहता हूँ, बुद्धि तब भी बनी रहती है।" जब तुम गहरी नींद या सुषुप्ति मे होते हो (आप जानते है कि एक दशा ऐसी होती है कि जो गहरी नींद या सुषुप्ति

कहलाती है। उस दशा में स्वप्न भी नहीं दिखाई पड़ते), तब बुद्धि कहाँ रहती है, मन कहाँ होता है!

वह सोचने लगा—"हाँ! वह शून्यता में चली जाती है। वह वहाँ नहीं है; अर्थात् बुद्धि वहाँ नहीं है, मन वहाँ नहीं है।" किंतु तुम वहाँ हो या नहीं! उसने कहा, "ओह, मैं अवश्य वहाँ ही हूँगा, मैं मर नहीं सकता, मैं वहीं रहता हूँ"। अच्छा, अब ध्यान दो। गहरी नींद की दशा में भी जब बुद्धि नहीं रह जाती है, जहां बुद्धि मानो खूँटी या बांस पर टांगे हुए वस्त्र की तरह हो जाती है, जहां बुद्धि उतार कर अरगनी पर टांगे हुए अंगरखे के समान है; तुम तब भी वहां हो, तुम मर नहीं जाते। लड़के ने कहा "बुद्धि वहाँ नहीं रहती, और मैं मर नहीं जाता, यह मेरी समझ में अच्छी तरह नहीं आता।"

फिर लड़के से पूछा गया, यह गहरी नींद लेकर जब तुम जागते हो, तब जागने के बाद क्या ऐसी बातें नहीं कहते? "आज रात को मुझे खूब नींद आई, आज मैंने स्वप्न नहीं देखे।" क्या ऐसी युक्तियां तुम्हारी नहीं होतीं? उसने कहा, "होती है"। बहुत अच्छा, यह बात बड़ी सूक्ष्म है। तुम सब को ध्यान से सुनना होगा। गहरी नींद से जागने पर जब यह बात कही जाती है कि "मुझे ऐसी गहरी नींद आई कि मैंने स्वप्न नहीं देखे; मैंने नदियां, पहाड़ नहीं देखे; उस अवस्था में न कोई पिता था, न माता थी, न घर था, न कुटुम्ब; ऐसी कोई वस्तु नहीं थी; सब वस्तुयें मुर्दा और लुप्त थीं; वहां कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ भी नहीं था; मैं सो गया और वहां कुछ नहीं था।" यह बयान उस आदमी का सा बयान है जिसने एक जगह का ऊजड़पन देखा और और कहा था, "घोर रात्रि में अमुक अमुक स्थान पर एक भी मनुष्य मौजूद नहीं था"। उस मनुष्य से यह बयान लिखने को कहा गया था। उसने इसे काग़ज़ पर लिखा। हाकिम ने उससे पूछा—अच्छा, क्या यह

तेरा बयान सत्य है ? उसने कहा, "जी हाँ"। अच्छा, यह बयान तुम्हारा सुना-सुनाया है या अपने निजी ज्ञान के आधार पर है ? क्या तुम निज नेत्र से देखने वाले साक्षी हो ? उसने कहा, "जी हाँ ! मै निज नेत्र से देखने वाला गवाह हूँ। किसी के सुने सुनाये पर आधारित नही है"। तुम इनके निज नेत्र से देखने वाले गवाह हो कि कागज पर वर्णित स्थान मे वर्णित समय पर कोई भी मनुष्य उपस्थित नही था। उसने कहा, "हाँ"। तुम क्या हो ? तुम मनुष्य हो या नही ? उसने कहा, "हाँ, मै एक मनुष्य हूँ। तो फिर तुम्हारे कथनानुसार यदि यह बयान सत्य है, तो हमारे अनुसार यह असत्य है। तुम वहाँ मौजूद थे और तुम भी एक मनुष्य हो, इस लिये यह बयान कि "वहाँ एक भी मनुष्य न था," अक्षरशः सत्य नही हो सकता, तुम तो वहाँ मौजूद थे। तुम्हारे अनुसार यह बयान सत्य होने के लिए हमारे अनुसार इसे असत्य होना पड़ेगा, क्योंकि वहा कोई भी चीज न होने की साक्षी के लिए कोई अन्य चीज़ वहा अवश्य होनी चाहिए, कम से कम स्वयं तुम को उस स्थान पर होना ही चाहिए।

इसी तरह गहरी नींद लेने के बाद जब तुम जागते हो, तो यह बात कहते हो, "मैने स्वप्न मे कोई चीज़ नही देखी"। अच्छा, हम कह सकते है कि तुम तो मौजूद रहे ही होगे। वहाँ कोई पिता, माता, पति, स्त्री, घर, नदी, परिवार नहीं उपस्थित था, परन्तु तुम तो उपस्थित ही होगे। तुम जो गवाही दे रहे हो, वही तुम्हारी गवाही सिद्ध कर रही है कि तुम सोये नही, तुम्हे निद्रा नही आई। यदि तुम्हे नींद आई होती तो हम से वहाँ की शून्यता की बात कौन बताता ? तुम बुद्धि से परे कोई वस्तु हो। बुद्धि सोई हुई थी, मस्तिष्क एक प्रकार से आराम मे था, किन्तु तुम निद्रा मे नही थे। यदि तुम सोते होते तो रक्त-नाड़ियो मे रक्त का सञ्चारण कौन करता ? पेट मे

पाचन-क्रिया कौन जारी रखता ? तुम्हारे शरीर की बाढ (वृद्धि) को कौन जारी रखता, यदि तुम वास्तव मे गहरी नीद की दशा को प्राप्त हुए होते ? इस प्रकार तुम ऐसी कोई वस्तु हो जो कभी नही सोती, बुद्धि सोती है परन्तु तुम नहीं। मै शरीर, बुद्धि, और मन से परे कोई वस्तु हूँ।

अब लडके ने कहा, "जी महाराज ! महाराज जी ! मै यहाँ तक समझ गया और जान गया कि मै दिव्य शक्ति हूं, मै अनन्त शक्ति हूं, जो कभी नहीं सोती, कभी नही बदलती। मेरी जवानी में शरीर की दूसरी दशा थी, मेरे बचपन मे मन वैसा नहीं था जैसा अब है, शरीर भी वैसा नहीं था जैसा अब है। मेरे बचपन में मेरी बुद्धि, शरीर और मन मेरी आज की दशा से नितान्त भिन्न हालत में थे।" डाक्टर लोग हमे बतलाते हैं कि सात वर्ष के बाद सम्पूर्ण कायव्यूह बिलकुल ही बदल जाता है। प्रत्येक क्षण शरीर बदल रहा है, प्रति पल मन बदल रहा है, और बचपन मे आप के जो मानसिक विचार थे, जो मानसिक भावनाये थीं, वे अब कहाँ हैं ? बालकपन के दिनो मे आप सूर्य को देवदूतो के खाने के लिए सुन्दर कचौरी समझते थे, चन्द्रमा सीसे का एक सुन्दर टुकडा था, तारे हीरो के समान बडे थे। ये विचार अब कहाँ चले गये ? तुम्हारा मन, तुम्हारी बुद्धि बिलकुल ही बदल गई है, उनमें सोलह आने परिवर्तन हो गया है। किन्तु तुम अब भी कहते हो, "जब मै बच्चा था, जब मै लडका था, जब मै सत्तर वर्ष का हो जाऊंगा"। तुम अब भी ऐसी बाते कहते हो, जिनसे स्पष्ट होता है कि तुम कोई ऐसी चीज हो, जो बचपन मे भी थी, जो बालकपन में भी थी और जो सत्तर वर्ष की अवस्था में भी वही रहेगी। जब तुम कहते हो, "मै सो गया, मुझे गहरी नीद आ गई, इत्यादि," जब तुम ऐसी बाते कहते हो, तब स्पष्ट होता है कि शुद्ध "मै" तुम में है, वास्तविक आत्मा

तुम मे है, जो स्वप्न देश मे वैसा ही रहता है, जैसा कि जाग्रत मे, तुम्हारे भीतर ऐसी कोई वस्तु अवश्य है, जो तुम्हारी मूर्छावस्था मे भी रहती है, और जो उस समय भी रहती है जब तुम नहाते हो, खाते हो और लिखते-पढ़ते हो। कृपा करके जरा सोचिये, विचारिये, ध्यान में लाइये। क्या तुम ऐसी कोई वस्तु नही जो सब परिस्थितियो में एक समान रहती है, जिस की दशा निर्विकार है, जो आज, कल और सर्वदा एकरस है? यदि ऐसी है, तो थोडा और विचार कीजिये, और तुरन्त तुम्हारा ईश्वर का सामना करा दिया जायगा। आप जानते हैं कि आप को वचन दिया गया था—"अपने को जानो, ठीक पता कागज पर लिख दो और तुरन्त ईश्वर से तुम्हारी भेट करा दी जायगी।"

अब लडके को अर्थात् राजकुमार को यही आशा थी कि चूंकि मैं अपने को जान गया हूँ, मुझे पता लग गया है कि मै कोई निर्विकार वस्तु हूं, कोई चीज निरन्तर हूँ, कोई ऐसी वस्तु हूं जो कभी नही सोती, अब मुझे ईश्वर को जानना चाहिए। कुमार से कहा गया, "भाई! देखो, यहाँ पर ये पेड बढ रहे हैं। इस पेड़ को जो शक्ति बढ़ा रही है क्या वह उस शक्ति से भिन्न है जो उस वृक्ष को बढा रही है?" उसने कहा, "नही, नही, निश्चय एक ही शक्ति है"। अच्छा जो शक्ति इन सब पेडो को बढा रही है वह क्या उस शक्ति से भिन्न है जो पशुओ के शरीरो को बढ़ाती है? उसने कहा, "नहीं, नही, भिन्न नही हो सकती, एक ही शक्ति है"। अब, क्या वह बल, वह शक्ति जो तारो को चला रही है, उस शक्ति से भिन्न है जो नदियो को बहा रही है? उसने कहा, "उसमे भिन्नता नहीं हो सकती, एक ही शक्ति होनी चाहिए"। अच्छा, जो शक्ति इन वृक्षो को बढा रही है; उस शक्ति से भिन्न नही हो सकती जो तुम्हारे शरीर या केशा को बढाती है। प्रकृति की वही सर्वव्यापी शक्ति, जो तारों को चमकाती है, तुम्हारी आँखो को चमकाती है;

वही शक्ति, जो उस शरीर के बालों की वृद्धि वा उत्पत्ति का कारण है, जिसे तुम मेरा कहते हो, वही शक्ति प्रत्येक और सब की नाडियों में रक्त दौडाती है। सचमुच, तब तुम और क्या हो ? क्या तुम वही शक्ति नहीं हो, जो तुम्हारे बालों को बढाती है, जो तुम्हारे रक्त को तुम्हारी नाडियों में बहाती है, जो तुम्हारे भोजन को पचाती है ? क्या तुम वह शक्ति नहीं हो ? सचमुच तुम वही शक्ति हो, जो बुद्धि और मन के परे है। यदि ऐसा है तो तुम वह शक्ति हो, जो सम्पूर्ण विश्व की शक्ति का शासन कर रही है। वही आत्मदेव तुम हो, वही ईश्वर तुम हो, वही अज्ञेय, वही तेज, शक्ति, तत्त्व, जो जी चाहे कहलो, वही दिव्य-शक्ति वही सर्व रूप, जो सर्वत्र विद्यमान् है, वही तुम हो।

बालक चकित होकर बोला, "वास्तव में, वास्तव में मैंने ईश्वर को जानना चाहा था। मैंने सवाल किया था कि ईश्वर क्या है, और मुझे पता लग गया कि मेरा अपना आप, मेरी सच्ची आत्मा ईश्वर है। मैं क्या पूछ रहा था, मैंने क्या पूछा था, कैसा बेहूदा प्रश्न मैंने किया था। मुझे अपने ही को जानना था, मुझे जानना था कि मैं कौन हूँ, और ईश्वर का पता लग गया। इस तरह ईश्वर ज्ञात हो गया।"

इस सच्चाई के अनुभव करने के मार्ग में एक यही कठिनाई है कि लोग बच्चों का स्वाग (अभिनय) करते है। आप जानते है, बच्चे कभी कभी किसी विशेष प्रकार की थाली पर मुग्ध हो जाते है, और तब तक कोई पदार्थ भोजन करना नही चाहते जब तक उनकी प्रिय थालियों में वह चीज नही परोसी जाती। वे यही कहेंगे, "मै अपनी थाली में खाऊँगा, मै अपनी रकाबी में खाऊँगा, दूसरी किसी थाली में मै कोई वस्तु ग्रहण न करूंगा"। ऐ बच्चो ! देखो, केवल यही एक विशेष रकाबी तुम्हारी नही, घर की सब तश्तरियां तुम्हारी ही हैं, सब सुनहली थालियां तुम्हारी हैं। यह एक भ्रम है

यदि इस संसार मे लोग अपने को जानले, तो वे अपने वास्तव स्वरूप को सर्वशक्तिमान ईश्वर वा अनन्त शक्ति पाले। किन्तु वे तो अपनी इस विशेष थाली अर्थात इस सिर वा दिमाग पर लट्टू हो गये हैं। मस्तिष्क के द्वारा जो कुछ होता है, केवल वही मेरी करनी है। मन और बुद्धि के द्वारा जो कुछ होता है वह तो मेरा है और शेष सब मैं नहीं अपना सकता; बाकी सब मैं अस्वीकार करता हूँ। मै केवल वही ग्रहण करता हूँ, जो इस विशेष थाली मे मुझे परसा जाता है। यहीं से स्वार्थ शुरू होता है। वे सब कुछ इसी थाली के द्वारा करना चाहते हैं। और इस थाली द्वारा की हुई वस्तु को अपनी समझते हैं, और हर एक चीज़ इसी छोटी सी थाली के आस पास जमा करना चाहते हैं, जिसे वे विशेषत: अपनी बताते है और जिससे उन्होंने अपनी एकता मानली है। संपूर्ण स्वार्थपरता तथा समस्त चिंता और विपत्ति का यही कारण है। इस मिथ्या विचार से पीछा छुटाओ, अपने सच्चे स्वरूप को सर्वरूप अनुभव करो, इस स्वार्थमय अहंकार से ऊपर उठो, इसी क्षण तुम आनन्द पाओगे, सम्पूर्ण विश्व से तुम्हारी एकता हो जायगी। यह उसी ढंग की भूल है जैसी राजकुमार ने की थी, जब जकडनेवाला प्रश्न कुमार से किया गया था "तुम्हारा स्थान कहाँ है?" और उसने राजधानी बताई थी, "वह मेरा स्थान है"। ऐ लडके! राज्य की राजधानी ही तेरा एक मात्र स्थान नही है। सम्पूर्ण राज्य अर्थात् समग्र देश तुम्हारा है। तुम उस प्रधान नगर मे, अर्थात् राजधानी में रहते हो, किन्तु वह राजधानी ही तुम्हारा एक मात्र स्थान नही है, समग्र राज्य तुम्हारा है। यह सुन्दर भू-भाग, ये सुहावने दृश्य, हिमालय की यह महान् रचना, ये सब तुम्हारे ही है, न कि केवल वह विशेष छोटा नगर।

लोगों से यही भूल होती है। यही बुद्धि या दिमाग तुम्हारे वास्तविक

स्वरूप अर्थात् आत्मा का मुख्य नगर अथवा राजधानी कहा जा सकता है। किन्तु तुम्हे कोई अधिकार नहीं है कि केवल इसी को तुम अपना कहो और अन्य सब को पराया। मस्तिष्क रूपी यह छोटी सी राजधानी अर्थात् मन या बुद्धि की यह राजधानी मात्र ही तुम्हारी नही है। विशाल संसार अर्थात् सम्पूर्ण विश्व तुम्हारा है। समस्त सूर्य्य, तारे, चन्द्रमा, भूमि, ग्रह तथा आकाश-गंगा (milky ways) ये सब तुम्हारे है। इसका अनुभव करो। अपना जन्म-अधिकार अभी प्राप्त करो। सब चिन्ता, सब विपत्ति दूर हो जायगी।

लोग स्वाधीनता की चर्चा करते हैं। लोग मुक्ति को चर्चा करते हैं। पहले यह तो देखो कि वह है क्या, जो तुम्हे बाधे हुए है? यदि तुम स्वाधीन होना चाहते हो, यदि तुम मुक्ति पाना चाहते हो, तो तुम्हे जानना चाहिए कि तुम्हारे बन्धन का कारण क्या है। यह ठीक कहानी के बन्दर की सी बात है। भारत मे बन्दर बड़े विलक्षण ढंग से पकडा जाता है। एक सकरे मुँह का बरतन ज़मीन मे गाड दिया जाता है और उसमे कुछ मेवाजात और बन्दरो के रुचिकर अन्य खाद्य पदार्थ रख दिये जाते है। बन्दर आते हैं। और भाँड़े मे अपने हाथ डालकर उनको मेवो से भर लेते है। इससे मुट्ठी मोटी हो जाती है और फिर निकाले नही निकलती। इसी से बन्दर पकडा जाता है, वह निकल नही सकता। अद्भुत रीति से अर्थात् विचित्र उपाय से बन्दर पकडा जाता है।

हम पूछते हैं, तुम्हे पहले कौन बाधता है? तुमने स्वयं अपने को दासता और बन्धन के अधीन किया है। यह समग्र विस्तृत सुन्दर बन है, और सम्पूर्ण विश्व के इस महान् सुंदर बन में एक सकरे गले का बरतन मिलता है। संकीर्ण गले का यह बरतन क्या चीज़ है? यह तुम्हारा मस्तिष्क है। यह छोटा दिमाग ही संकरे मुँह का बरतन है। इसमें कुछ बादाम आदि मगजियात है और लोगो ने इनको पकड़

लिया है। दिमाग की आदत या इस बुद्धि के माध्यम द्वारा किया हुआ सब कुछ मनुष्य अपना मान लेता है। हर एक कहता है, "मै मन हूँ।" हर एक मनुष्य ने कार्यतः अपने को मन मान लिया है। "मैं मन हूँ. मै बुद्ध हूँ"। और संकरे मुख के बरतनों के इन मेवों को वह मज़बूत पकड़ता है। यही तुम को गुलाम बनाता है। यही तुमको चिन्ता, भय, प्रलोभनों, और सब तरह के क्लेशों का दास बनाता है। यही तुमको बाधता है। इस संसार मे सब दुःखो का कारण यही है। यदि तुम मुक्ति चाहते हो, यदि तुम स्वाधीनता चाहते हो, तो मुट्ठी खोल दो, अपने हाथ खाली कर दो। सारा जंगल तुम्हारा है, तुम हर एक वृक्ष पर कूद फाद सकते हो और जंगल की सब वस्तुये अर्थात् जंगल के सब फल, और अखरोट खा सकते हो। ये सब तुम्हारे है। सम्पूर्ण संसार तुम्हारा है। इस स्वार्थपूर्ण अज्ञानता को छोड दो, और तुम स्वतंत्र हो, अपने त्राता आप ही हो।

"Making a famine where abundance lies
(Is it fair ? No. it is not fair, it is not becoming)
Making a famine where abundance lies.
This thy foe, to thy sweet self so cruel.
Should not be so, should not do this,
Within thine own bud buriest thou content
Thou makest waste and niggarding,
Be not niggardly, be not miserly,"

(It is niggardliness to give away all this property and confine thyself unto the few things in this little brain only.)

यदि सब से अपनी एकता का तुम अनुभव कर लो, तो तुम देखोगे कि तुम्हारा यह मस्तिष्क अनन्त शक्तिशाली हो जायगा।

यह वह बात है जो सारे संसार से तुम्हारी पूर्ण अभेदता कर देगी।

(1) "Oh, we can wait no longer,
We too take ship, O soul.
(here the word soul means intellect)
Joyous we too launch out on trackless seas
Fearless for unknown shores on waves of ecstasy to sail
Amid the wafting winds, (thou pressing me to thee, I thee to me, O soul).

(2) Carolling free, singing our song of God
Chanting our chant of pleasant exploration
With laugh and many a kiss,
(Let others deprecate, let others weep for sin, remorse, humiliation)
O soul, thou pleasest me, I thee.

जहाँ प्रचुरता है वहाँ दुर्भिक्ष डालते हो।

(क्या यह न्याय है? नहीं, यह न्याय नहो है, यह उचित नहीं है)।

जहा प्रचुरता है वहा दुर्भिक्ष डालते हो, यही (स्वार्थपूर्ण अज्ञान) तेरा शत्रु है, तेरे मधुर आत्मा के प्रति इतना निष्ठुर है; ऐसा न होना चाहिए, ऐसा न करना चाहिए। अपनी ही कली के भीतर छुपकर तू सतुष्ट रहता है। तू गंवाता है, और वह भी कंजूसी से। कंजूस मत बन, लोभी मत बन। (यह सब मालमता दे देना और इस छोटो सी बुद्धि की कुछ चीज़ो से अपने को परिमित कर लेना कंजूसी है।)

(१) "ओह, अब हम नही ठहर सकते; ऐ बुद्धि हम भी जहाज पर सवार होते है।

ऐ बुद्धि ! (तू अपने अंक में मुझको भरती हुई, और मैं अपने में तुझे भरता हुआ) निर्भीकता में अज्ञात तटों की ओर खेने को प्रचण्ड वायु के बीच, हर्षोन्माद की लहरों पर, सहर्ष हम भी पथहीन समुद्र में रवाना होते हैं।

(२) निश्चिन्तता से गायन करते हुए, ईश्वर का अपना गीत गाते हुए, सुखमय अन्वेषण की तानें अलापते हुए, तू हंसी और अनेक चुम्बनों के सहित, तू ऐ बुद्धि ! मुझ को आनन्द देती है, मैं तुझको देता हूं। (दूसरों को क्षमा-प्रार्थना करने दो, दूसरों को पाप अनुताप और अपकर्ष के लिए रोने दो)।

(3) Ah more than any priest, O soul, we too believe in God
But with the mystery of God we dare not dally.
O soul, thou pleasest me. I thee,
Sailing these seas or on the hills, or waking in the night,
(4) Thoughts, silent thoughts of Time and Space and Death, like waters flowing.
Bear me indeed as through the regions infinite.
Whose air I breathe, whose ripples hear. leave me all over,
Bathe me, O God, in thee, mounting to thee
I and my soul to range in range of thee.

(5) O thou transcendent,
Nameless. the fibre and the breath;
Light of the light. shedding forth universes, thou centre of them,
Thou mightier centre of the true, the good. the loving
Thou moral, spiritual fountain affection's source thou reservoir,

(O pensive soul of me—O thirst unsatisfied—waitest not there
Waitest not haply for us somewhere there the Comrade perfect)
Thou pulse—thou motive of the stars, suns, systems,
That, circling, move in order, safe, harmonious,
Athwart the shapeless vastness of space,
How should I think, how breathe a single breath, how speak, if, out of myself.

(३) ऐ बुद्धि, हम भी किसी धर्माचार्य से अधिक ईश्वर में विश्वास रखते हैं, किन्तु ईश्वर के रहस्य के साथ विलास करने का हमे साहस नही। ऐ बुद्धि ! तू मुझको आनन्द देती है, मैं तुझको।

(४) इन समुद्रो मे खेते हुए, या पहाडो पर चलते हुए, या रात में जागते हुए, जल की तरह बहते हुए विचार अर्थात् काल-देश और मृत्यु के मौन विचार, वास्तव में मानो मुझे ऐसे अनन्त प्रदेशों के बीच मे ले जाते है, जिनकी पवन का मै श्वास लेता हूं, जिस की सनसनाहट मै सुनता हूँ, और जो पवन मेरे सारे अंगो को धो डालती है। हे भगवन् ! मुझे और मेरी बुद्धि को तू अपनी श्रेणी में मिलने दे। और जब मै आपकी ओर बढ़ूँ तो मुझे तू अपने मे नहाने दे या डुबकी लगाने दे।

(५) हे भगवन् ! तू सर्वोच्च, बेनाम, श्वास और नाडी, प्रकाश का भी प्रकाश, विश्वो को रचता हुआ उनका केन्द्र है, और तू सत्य, धर्म और प्रेम का भी महान् केन्द्र है। तू सभ्यता और आध्यत्मिकता का स्रोत वा प्रेम का मूल और भण्डार है।

(ऐ मेरी चिन्ताग्रस्त बुद्धि ! ऐ बेबुझी प्यास, क्या तू वहाँ राह नही देख रही है ? क्या कही पर वहा हमारा पक्का साथी (निजात्मा) सहर्ष हम लोगो की राह तो नहीं देख रहा है ?)

तू नाडी है अर्थात् तू विश्व की, ब्रह्माण्ड की तथा उन सूर्यों, नक्षत्रों और मंडलों की प्रेरक है, जो चक्कर काटते हुए आकाश के निराकार और अनन्त विस्तारों के आर पार क्रम पूर्वक, सुरक्षित और एक ताल घूमते हैं। यदि मैं अपने से बाहर हो जाऊं तो फिर मैं कैसे विचार सकूं, बोल सकूं और एक श्वास तक ले सकूं।

(6) I could not launch, to those, superior universes ,
Swiftly I shrivel at the thought of God,
At Nature and its wonders, Time and Space and Death,
But that I, turning, call to thee, O soul, thou actual me,
And lo, thou gently masterest the orbs,
Thou matest Time, smilest content at Death,
And fillest, swellest full the vastnesses of Space,

(7) Greater than stars or suns
Bounding, O soul, thou Journeyest forth :
What love than thine and ours could wider amplify ?
What aspirations, wishes, outvie thine and ours, O soul ?
What dreams of the ideal ? what plans of purity, perfection, strength ?
What cheerful willingness for other's sake to give up all ?
For other's sake to suffer all ?

(8) Reckoning ahead, O soul, when thou, the time achiev'd,

The seas all cross'd, weather'd the capes, the voyage done,
Surrounded, copest, frontest God yieldest, the aim attain'd,
As fill'd with friendship, love complete, the Elder Brother found,
The Younger melts in fondness in his arms.

(६) मै उन महान् विश्वो मे घुस नहीं सका। ईश्वर का ध्यान होते ही, प्रकृति और उसके चमत्कारो पर, देश और काल तथा मृत्यु पर, मै जी मे सिकुडता हूँ ; पर ऐ बुद्धि, जो कि तू वास्तविक 'मै' है, वही 'मै' (जब) फिर कर तुझे पुकारती है, तब देखो, तू सहज ही मे ग्रहमण्डलो की मालिक बन जाती हैं, तू समय की सगिनी बन जाती है, संतोष से मृत्यु पर मुस्कराती है, और आकाश के अनन्त विस्तारो को ऊपर तक लबालब भर देती है ?

(७) नक्षत्रों या सूर्यो से अधिक फुदकती हुई, ऐ बुद्धि ! तू आगे यात्रा करती है। मेरे और तेरे प्रेम से अधिक दूसरा कौन प्रेम विशेष विस्तार मे फैल सकता है ? ऐ बुद्धि ! तेरी और मेरी से बढ़कर कौन सी आकांक्षाये व अभिलाषाये हो सकती हैं ? आदर्श के कौन से स्वप्न ; पवित्रता, सिद्धि, शक्ति की कौन सी तदबीरें ; दूसरो के लिए प्रसन्नता पूर्वक सर्वस्व त्याग की कौन सी हर्ष-पूर्वक इच्छाये, और दूसरो के लिए सब कुछ सहने की कौन सी आकांक्षाये, मेरी और तेरी से बढ़ी चढ़ी हो सकती है ?

(८) आगे का ख्याल करते हुए, जब तू ऐ बुद्धि ! समय पाकर, सब समुद्र पार कर लेगी, अन्तरीपो (Eahes) की सब दिक्कतें झेल जायगी, और यात्रा हो चुकेगी ; जब ऐ बुद्धि ! (चारो ओर से ईश्वर से) घिरी हुई, तू सामना करती हुई ईश्वर के सम्मुख होती अपने को

अर्पण कर देगी, तब तू लक्ष्य को ऐसे प्राप्त होगी जैसे सौहार्द और प्रेम से परिपूर्ण बड़े भाई के मिल जाने पर छोटा भाई उसकी स्नेहमयी गोद में पिघल जाता है।

(9) Passage to more than India !
Are thy wings plumed indeed for such far flights ?
O soul, voyagest thou indeed on voyage like those ?
Disportest thou on waters such as those ?
Soundest below the Sanscrit and the Vedas ?
Then have thy bent unleash'd.

(10) Passage to you, your shores, ye aged fierce enigmas !
Passage to you, to mastership of ye strangling problems,
You, strew,d with the wrecks of skeletons, that, living, never reach'd you.

(11) Sail on, march on to the real self , get rid of all this superstition, this superstition of the body Get rid of this hypnotism of this little body . you have hypnotized yourself into this brain or body Get rid of eternity, the reality, the true self , passage to more than India.

(12) Passage to more than India !
O Secret of the earth and sky !
Of you O waters of the sea ! O winding creeks and rivers !
Of you O wood and fields ! of you strong mountains of my land !
Of you O Prairies ! of you gray rocks !
O morning red ! O clouds ! O rain and snows !
O day and night, passage to you !

(९) (परम प्रिय!) भारत से भी अधिक [दूर] का मार्ग ! क्या तेरे पंख सचमुच ऐसी लम्बी उडानो के योग्य है ? ऐ बुद्धि ! ऐसी लम्बी यात्रायें भी क्या सचमुच तू करती है ? ऐसे जलो पर भी तू बिहार करती हे ? क्या तू संस्कृत और वेदो के नीचे से ध्वनि उठाती है ? तो ले, अपने बन्धन का पट्टा खारिज करवा ले।

(१०) तेरे लिए मार्ग है, तट तेरे हैं, ऐ पुरानी भयंकर पहेलियो ! ऐ गलाघोटू समस्याओ ! तुम्हे बूझने के लिए अब रास्ता साफ़ है। जीते जी जो तुमको कभी न पहुँच सके, उनके कंकालो (ढॉचो) के टुकडो वा ढेरो से तुम ढकी हुई हो।

(११) खेते चलो, बढे चलो अपने वास्तविक स्वरूप तक। इस सम्पूर्ण अन्ध-विश्वास का, शरीर के इस अन्ध-विश्वास को छोडो। इस क्षुद्र शरीर के जादू से पिड छुडाओ। तुमने अपने को इस बुद्धि या शरीर के मोह मे फंसा लिया है। उससे पीछा छुडाओ; खेते चलो; नित्यता, वास्तविकता अर्थात् सच्ची आत्मा की ओर बढ़े चलो। भारत से भी अधिक दूर का मार्ग लो।

(१२) ऐ भारत से भी अधिक दूर के रास्ते ! ए भूमि और आकाश के रहस्य। ऐ समुद्र के जलो ? ऐ घूमती हुई खाडियो और नदियो ! ऐ बनो और खेतो ! ऐ मेरे देश के बिशाल पर्वतो ! ऐ पाडुवर्ण चट्टानो ! ऐ भारी भारी भूधरो ! ऐ आरक्त प्रातः काल ! ऐ बृष्टि और हिमो ! ऐ दिन और रात ! तुम्हारे रहस्य का मार्ग साफ है।

(13) Rise above the body, and you become all these, you get a passage unto all these. All these you realise yourself to be

14) O sun and moon and all you stars ! Sirius and Jupiter !

Passage to you !
passage, immediate passage ! the blood burns in my veins !
Away, O soul ! hoist instantly the anchor !
(15) Cut the hawsers—haul out—shake out every sail
Have we not stood here like trees in the ground long enough ?
Have we not grovel'd here long enough, eating and drinking like more brutes ?
Have we not darken'd and dazed ourselves with books long enough ?
(16) Sail forth—steer for the deep waters only,
Reckless O soul, exploring, I with thee, and thou with me
For we are bound where mariner has not yet dared to go
And we will risk the ship, ourselves and all
(17) O my brave soul !
O farther, farther sail !
O daring joy, but safe ! are they not all the seas of God ?
O farther, farther, , farther, sail !

(१३) शरीर से ऊपर उठो, और तुम ये सब हो जाते हो, तुम्हें इन सब के लिए रास्ता मिल जाता है। अनुभव करो कि तुम स्वय ये सब हो।

(१४) ऐ चन्द्र और सूर्य और समस्त नक्षत्रों ! बृहस्पति और लुब्धक ! तुम को पहुँचने का मार्ग, अर्थात् तुम्हें तुरंत पहुँचने का मार्ग साफ है। रक्त मेरी नसों में उबल रहा है। ऐ बुद्धि तुरन्त लंगर उठाकर चल दे !

(१५) (इस शरीर रूपी जहाज़ के) रस्से काट डालो, (इसे) बाहर निकाल दो और हर एक बादबान खोल दो। भूमि पर वृक्षों की तरह क्या काफी देर तक हम यहां नहीं खड़े रहे? केवल पशुओं के समान खाते पीते क्या हम यहां काफी देर तक रेंगते नहीं रहे? क्या हमने देर तक अपने को पुस्तकों मे चौंधिया और अन्धकार मय नहीं बना लिया है?

(१६) खेते चलो केवल गहरे पानी के लिए नाव बढ़ाओ। निश्चिन्तता से ऐ बुद्धि! मैं तेरे साथ, और तू मेरे साथ अन्वेषण करते हुए बढ़ो। क्योंकि हमारा लक्ष्य वह है जहाँ जाने का किसी नाविक ने अभी तक साहस नहीं किया।

अपने को, सर्वस्व को और जहाज को हम जोखिम में डालेंगे।

(१७) ऐ मेरी वीर बुद्धि! ओ, आगे आगे खेओ! ऐ साहसी किन्तु सुरक्षित आनन्द! क्या वे सब समुद्र ईश्वर के नहीं हैं? ओ आगे, आगे और आगे खेओ।

पाप; आत्मा से उसका सम्बन्ध

[रविवार ता० १६ नवम्बर सन् १६०२ को दिया हुआ व्याख्यान ।]

बहनो और भाइयो !

पिछले सप्ताह मे जो चार व्याख्यान दिये गये है उन्ही के सिलसिले मे आज का विषय है। जिन्होने पिछले व्याख्यान सुने हैं वे इसे खूब समझ सकेगे ।

आज के व्याख्यान मे राम पाप की व्याख्या नही करेगा, अथवा पाप कौन लाया ? कहाँ से यह आया ? या संसार मे यह पाप क्योंकर है ? कुछ लोग दूसरो से अधिक पापी क्यो होते है ? कुछ लोगो मे दूसरो से लालच क्यो अधिक होता है ? और दूसरो मे लालच की अपेक्षा क्रोध क्यो अधिक होता है ? इत्यादि प्रश्नो मे न पड़ेगा। यदि समय मिला तो इन प्रश्नो का विचार किसी दूसरे व्याख्यान मे किया जायगा।

पाप शब्द का व्यवहार उसके साधारण अर्थ मे आज हम कर रहे हैं, अथवा उस अर्थ मे उसका जो अर्थ समस्त ईसाई संसार ग्रहण करता है।

इस ससार मे आप कुछ अति विचित्र घटना, अत्यन्त विलक्षण वा अजीब घटना देखेंगे। आप इस संसार मे कुछ ऐसी बाते देखेंगे जो तत्वज्ञानियो की चतुरता को मात करती है; और आपको कुछ ऐसे नैतिक और धार्मिक तथ्य दिखाई पड़ेंगे जो वैज्ञानिको को उद्विग्न करनेवाले है। वेदान्त के प्रकाश मे अर्थात् वेदान्त के विचारानुसार आज इनकी व्याख्या की जायगी। पाप की अद्भुत घटना भी इन्हीं

विचित्र तथ्यों के अन्तर्गत है। यह कैसी बात है कि हर एक मनुष्य जानता है कि इस संसार में जिसने जन्म लिया है वह मरेगा अवश्य। प्रत्येक पेड़ जो पृथ्वी पर दिखाई देता है वह एक दिन अवश्य नष्ट होगा। प्रत्येक पशु जो पृथ्वी पर दिखाई देता है एक दिन नष्ट अवश्य होगा। प्रत्येक मनुष्य मरेगा अवश्य; हर आदमी यह जानता है। बड़े बड़े सूरमा, सिकन्दर, नेपोलियन, वाशिंगटन, वेलिंगटन, आदि जो लाखों मनुष्यों की मौत के कारण हुए। सब मरे। ये सब के सब, जिनके हाथों में नर-संहार और रक्तपात वर्णन से बाहर हुए, मृत्यु को प्राप्त हुए। वे भी मरे, और मरों को जीवित करने वाला भी मरे। हम जानते हैं, शरीर नश्वर है। हर एक मनुष्य यह जानता है, परन्तु व्यवहार में कोई भी इस पर विश्वास नहीं करता। बुद्धि से तो वे इसे स्वीकार करते हैं; परन्तु व्यावहारिक विश्वास इस तथ्य में नहीं दिखलाते। यह क्या बात है? जो सत्तर वर्ष का हो चुका है, जो नब्बे वर्ष का होने वाला है, ऐसे बूढ़े से बूढ़े मनुष्यों के पास जाओ और तुम देखोगे कि वह भी अपने सम्बन्धों की फैलावट जारी रखना चाहता है, वह हमेशा इस संसार में रहना चाहता है, मृत्यु को परित्याग करना चाहता है, और व्यावहारिक जीवन में अपनी मौत की बात कभी नहीं सोचता। वह अपनी सम्पत्ति बढ़ाना चाहता है, वह अपने नातेदारों और मित्रों का मण्डल बढ़ाना चाहता है, वह अपने शासन में अधिकाधिक सम्पत्ति चाहता है। वह जीते रहने की आशा करता है। व्यवहारतः मृत्यु में उसका कोई विश्वास नहीं है; और इसके सिवाय, मृत्यु का नाम ही उसके सारे शरीर में मूड़ की चोटी से पैर के अंगूठे तक, कंपकपी पैदा कर देता है। मृत्यु के नाम से सारा शरीर थरथराने लगता है। यह क्या बात है कि मनुष्य मृत्यु के ख्याल को नहीं सह सकता, मृत्यु के नाम को नहीं सह सकता, और साथ ही

जानता है; कि मौत अवश्यभावी है। यह क्या बात है? यह एक नियम विरोध है, एक प्रकार का असत्याभास वा उलटा आभास है। इसे समझाओ। मनुष्यों को मृत्यु में व्यावहारिक विश्वास क्यों नहीं होता, यद्यपि उसका बौद्धिक ज्ञान उन्हें होता है? वेदान्त इसे इस प्रकार समझाता है:—"मनुष्य में असली आत्मा है जो अमर है; वहां वास्तविक आत्मा है जो नित्य, निर्विकार, आज, कल और सदा एकरस है। मनुष्य में कोई ऐसी वस्तु है जो मृत्यु को नहीं जानती, किसी प्रकार के परिवतन को नहीं जानती। मृत्यु में व्यावहारिक अविश्वास का कारण मनुष्य में इस वास्तविक आत्मा की उपस्थिति है और यही वह वास्तविक नित्य तथा अमर आत्मा है जो अपने अस्तित्व को मृत्यु में लोगों के व्यावहारिक अविश्वास द्वारा सिद्ध करता है।"

अब हम एक दूसरी विचित्र घटना पर आते हैं, अर्थात् स्वाधीन होने की अभिलाषा की घटना पर। इस संसार में प्रत्येक प्राणी स्वतंत्र होना चाहता है। कुत्ते, शेर, चीते, पक्षी और मनुष्य को भी स्वाधीनता से प्रेम है। स्वाधीनता के ख्याल में सार्वभौम राष्ट्र खून गिराते हैं और मानव जाति के रक्त से भूमि तर करते हैं; पृथ्वी का सुन्दर मुख स्वाधीनता के नाम पर हत्याकाण्ड में, और रक्त से लोहित किया जाता है। ईसाई, हिन्दू, मुसलमान सब ने अपने सामने एक लक्ष्य रक्खा है। वह क्या है? मुक्ति, जिसका छोटा सा अर्थ आज़ादी है।

भारत में किसी मन्दिर में एक मनुष्य मिठाई बाँटता देखा गया। किसी हर्ष और अभ्युदय के समय भारतवासी गरीबों को मिठाई और दूसरी चीजें बाँटते हैं। किसी ने आकर पूछा, इस प्रसन्नता का कारण क्या है? मनुष्य ने कहा कि मेरा घोड़ा खोगया। चकित होकर उस ने कहा, "वाह! तुम्हारा घोड़ा खोगया और तुम आनन्द मना रहे हो"? मनुष्य ने कहा, "मेरी बात का उलटा अर्थ न समझो। घोड़ा

तो मैंने खो दिया, परन्तु सवार को बचा लिया है। चोरों के एक दल ने मेरा घोड़ा चुरा लिया। जिस समय घोड़ा टहलाया गया था उस पर कोई सवार न था। यदि मैं घोड़े पर सवार होता तो शायद मैं भी चुरा लिया जाता। धन्यवाद है कि घोड़े के साथ मैं नहीं चुरा लिया गया"। लोग जी खोल कर हँसे। वाह, कैसा सीधा आदमी है!

भाइयो और बहनो! यह कहानी हास्यजनक जान पड़ती है परन्तु हर एक को इसे अपने पर घटा कर देखना चाहिए कि वह इस मनुष्य से भी अधिक बेढंगा बर्ताव कर रहा है या नहीं। "उसने घोड़ा खो दिया, किन्तु अपने को बचा लिया।" परन्तु हजारों, नहीं लाखों मनुष्य क्या कर रहे हैं? वे घोड़े को बचाने की चेष्टा कर रहे हैं और सवार को खो रहे हैं। यह कितनी बुरी बात है। इस प्रकार जब उसने घोड़े को खो दिया और सवार को बचा लिया तो उसके लिए आनन्द मनाने का अवसर तो था ही। सभी जानते हैं कि असली आत्मा, या वास्तविक स्वरूप 'अहं' अथवा जीवात्मा का सूक्ष्म-शरीर से वैसा ही सम्बन्ध है जैसा सवार या घोड़े वाले का घोड़े से। किन्तु किसी से भी जाकर उसके वास्तविक स्वरूप तथा उसके विषय में पूछिये:—"तुम्हारा स्वरूप क्या है और तुम क्या करते हो?" उत्तर मिलेगा, "मैं अमुका-मुक महाशय हूँ। मैं फलां फलां कार्यालय में काम करता हूँ"। ये सब लक्षण और उत्तर केवल स्थूल-शरीर से सम्बन्ध रखते हैं। अर्थात् ये ऐसे उत्तर हैं, जो असंगत हैं। हम पूछते हैं, "तुम कौन हो, तुम क्या हो?" और उसके उत्तरों में उसकी वास्तविकता पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। यह लक्ष्य से बाहर है, प्रसंग से संगति नहीं रखता। हम उसके स्वरूप अर्थात् आत्मा के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं और वह हमें घोड़े की बात बता रहा है। हम सवार का हाल जानना चाहते हैं, और वह प्रश्न को टालकर ऐसी बातें बताता है, जो बिलकुल पूछी नहीं गई थी।

क्या हम घोड़े ही को सवार नहीं समझ रहे है ? घोड़ा खो गया है, अब गुल गपाड़ा मचाना चाहिए, खो गया ! खो गया !! खो गया !!! समाचार पत्रों में छपवा देना चाहिए, खोगया ! खोगया !! खोगया !!! क्या खोगया ? घोड़ा ? नहीं, घोड़ा नहीं खोगया है। हर एक घोड़े की बात कहता है। शरीर के लक्षण, चिह्न और हाल सब कोई कहने को तय्यार है। खोई हुई चीज है घोड़सवार, खोई हुई वस्तु है आत्मा अर्थात् वास्तविक स्वरूप, सार पदार्थ, जीवात्मा। महान् आश्चर्य है !

सच्चे स्वरूप, सवार अर्थात् वास्तविक आत्मा का हम कैसे पता लगावें और पावें ? गत सप्ताह के व्याख्यानों में प्रायः हर दिन इसी प्रश्न के उत्तर दिये गये। आज हम एक दूसरी ही विधि से अर्थात पाप की विचित्र की घटना से इस प्रश्न का उत्तर देंगे। पाप का मूल क्या है ? पाप ने इस संसार में कैसे प्रवेश किया ? जो उत्तर दिया जायगा वह उल्टा समझ पड़ेगा, विलक्षण व चकित करने वाला समझ पड़ेगा। किन्तु चकित मत होइये। देखने में यह आश्चर्यजनक उत्तर भी स्वयं आपकी बाइबिल के उपदेशों से सर्वथा संगत सिद्ध किया जा सकता है—जिस बाइबिल को यूरोपीय लोग उस तरह नहीं समझ सकते जिस तरह भारतवासी ; क्योंकि ईसा एशिया का है, और यह भी दिखाया जा सकता है कि वह भारत का भी है। बाइबिल के बहुत से रूपकों और अलंकारों की हिंदू शास्त्रों में बारम्बार आवृत्तियां हुई हैं। इस से हिन्दू वा एशिया के लोग, उस प्रकार की लेख-शैली के अभ्यासी होने के कारण, पाश्चात्य लोगों की अपेक्षा बाइबिल को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं। और इस लिये अभी जो उत्तर दिया जायगा वह जिन लोगों को अपने पोषित अथवा अति प्रिय विचारों और अति पूज्य भावों के सर्वथा विपरीति और आश्चर्य-जनक समझ पड़े, उन्हें धीरज धरना चाहिए, क्योंकि देखने में यह

अद्‌भुत व्याख्या अन्त में स्वयं तुम्हारी बाइबिल के उपदेशों के विरुद्ध नहीं है। पाप की समस्या पर आने के पूर्व हम कुछ प्रारम्भिक मामलों पर विचार करेंगे।

यह कैसी बात है कि पैदा होने वाले हर एक को यद्यपि मरना पड़ेगा ही, फिर भी लोग मृत्यु का विचार कभी नहीं कर सकते? मृत्यु का विचार मात्र उनके शरीर को कंपा देता है। और उनके सिर की चोटी से लेकर पैर के अंगूठे तक थर्राहट पैदा कर देता है। हम कहते हैं, यह क्या बात है कि भूत काल में जितने महाराजा हुए सब चल बसे, सब महात्मागण भी जो मृतकों को जीवित और उनके शरीरों को फिर उठाकर खड़ा करते थे, मृत्यु को प्राप्त हो गये। वे मुर्दों को ज़िन्दा करते थे पर उनके शरीर भी मुर्दा हो गये हैं। हम देखते हैं कि भूत काल के सारे धनाढ्य पुरुष तथा भूतकाल के सब बलिष्ठ पुरुष मर गये हैं। और बुद्धि के विचार-बिन्दु से हमें निश्चय है कि देर या सवेर हमारे शरीर अवश्य मरेंगे। तुम चाहे सत्तर वर्ष तक जीते रहो; नहीं, नहीं, उसकी दूनी, चौगुनी अवस्था तक के हो जाओ; परन्तु मरना अवश्य पड़ेगा। मौत से तुम नहीं बच सकते। यह सर्वथा निश्चित है। परन्तु महा विस्मयकर बात तो है यह कि ऐसा सब होते हुए भी कोई असली रूप से अपनी मृत्यु पर विश्वास नहीं कर सकता। हर एक मृत्यु पर विश्वास नहीं कर सकता। हर एक मृत्यु के विचार से घृणा करेगा, मृत्यु के आने की चिन्ता को न सहन करेगा। हर एक अपने साथियों से अपने सम्बन्धों को फैलाता जाता है और अपने नातेदारों से नातेदारियाँ बढ़ाता रहता है, अपने कार्य क्षेत्र की वृद्धि का प्रसार करता रहता है, और इस तरह हर एक ज़िन्दगी बसर करता है, मानो मृत्यु उसे कभी न ग्रसेगी, अथवा उसकी मृत्यु होना असम्भव है। यह क्या बात है? इसका क्या कारण है? मौत का नाम किसी से सुनते

ही मनुष्य के सारे शरीर में बुखार चढ़ आता है। यह क्यों? एक ओर तो मृत्यु का आना अटल है, दूसरी ओर हम उसके ख्याल से भी भागते हैं; ठीक ऐसे भागते हैं जैसे पक्षी अपने पंखों पर पानी पड़ते ही पानी को गिरा देता है। यह क्या बात है कि हम मृत्यु पर व्यावहारिक विश्वास कदापि नहीं कर सकते? मौत का वर्णन करने वाले गान आप भले ही गावें, परन्तु व्यवहार में मौत पर विश्वास कभी नहीं कर सकते। इसका कारण क्या है? वेदान्त इसकी व्याख्या करता हुआ कहता है कि वास्तविक कारण आपके वास्तविक आत्मा की अमरता है। आपका वास्तविक आत्मा कभी नहीं मर सकता। जिस शरीर को मरना है, जो हर क्षण मृत्यु को प्राप्त होता रहता है—मृत्यु से हमें यहाँ परिवर्तन समझना चाहिए—जो हर क्षण बदल रहा और मर रहा है, वह आपका वास्तविक आत्मा नहीं है। आप में कोई ऐसी वस्तु है, जो कभी नहीं मर सकती। इस शरीर के साथ आत्मा का, अर्थात् आपके वास्तविक स्वरूप का, जो कभी नहीं मर सकता, संयोग है। परन्तु आप कहेंगे कि व्यावहारिक जीवन में, अर्थात् दैनिक जीवन में हम यह विश्वास नहीं करते कि आत्मा कभी नहीं मरेगा, परन्तु हम यह विश्वास करते है कि हमारे शरीर कभी न मरेंगे—ऐसा विश्वास करते हैं कि हमारे शरीरों को अमर रहना चाहिए। हिन्दूधर्म का वेदान्त दर्शन कहता है, यद्यपि यह सत्य है कि आत्मा को नहीं मरना है और शरीर को मरना है; परन्तु भूल से आत्मा के गुण, अर्थात् वास्तविक स्वरूप या जीवात्मा का गौरव नाशवान् शरीर को प्रदान किया जाता है। इसके मूल में अविद्या है। यह विचार सार्वभौम है। यह सब कहीं अर्थात् सब देशों में वर्तमान है। और पशु-जगत् में भी यह वर्तमान है। इस विश्वास की सर्वव्यापकता को वेदान्त के सिवाय और कोई दूसरा तत्वशास्त्र नहीं समझाता। इस विश्वास की

सार्वभौमिकता एक तथ्य है, और यह तथ्य समझाया जाना चाहिए। जो तत्वशास्त्र प्रकृति के सब तथ्यों को नहीं समझाता, वह तत्वशास्त्र ही नहीं है। अधिकांश तत्वशास्त्रों की भाँति वेदान्त इस तथ्य को बिना समझाये नहीं छोड़ देता। कारण आन्तरिक होना चाहिए। बाहरी कारणों का प्रमाण देने के दिन गये। एक आदमी गिर पड़ता है, उसके गिरने का कारण उसी के भीतर दिखाना होगा। वह कह सकता है, जमीन फिसलनी थी, या इसी तरह की कोई और बात। किन्तु कारण घटना में ही दिखाना होगा, उससे बाहर नहीं। और यदि स्वयं घटना में कारण की प्राप्ति हो सकती हो, तो बाहरी कारणों में जाने का हमें कोई अधिकार नहीं है। अमरता के असली विश्वास को आप ऐसे कारणों से किस प्रकार समझा सकते है जो भीतरी हों, न कि बाहरी? शरीर में हम ऐसी कोई बात नहीं पाते जो हमें यह विश्वास अर्थात् अमरता का विश्वास दे सके। मन में हम ऐसी वस्तु नहीं पाते, जो यह विचार देने वाली हो। मन से परे जाओ, शरीर से परे जाओ, और वेदान्त असली स्वरूप अर्थात् सच्ची आत्मा को बताता है, जिसका वर्णन किसी पिछले व्याख्यान में किया जा चुका है। वही ज्योति स्वरूप, साक्षी-आत्मा और अमर है; वह आज, कल और सदा एक रस है। 'अ-मृत्यु' में इस सार्वभौम विश्वास का कारण हमें उस (आत्मा) में मिल सकता है। और व्यावहारिक जीवन में की हुई भूल वैसी ही है, जैसी गैलीलियो के समय में पूर्व समस्त मानव जाति ने की थी। जैसे पृथ्वी की गति सूर्य को (भ्रम से) प्रदान की जाती है। वैसे ही शरीर को आत्मा की दिव्य अमरता प्रदान करने में भी आप भूल करते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि अमर आत्मा और नश्वर शरीर दोनों विद्यमान हैं, और उनके साथ साथ अज्ञान अथवा अविद्या है। यह अविद्या कहाँ से आई? अब हम देखते हैं कि अविद्या मनुष्य में है, आत्मैव मनुष्य

में है, तथा शरीर भी मनुष्य में है। ये सब भीतरी चीज़ें हैं, इनमें से बाहर कोई नहीं, अर्थात् इनमें से आप के विषय से बाहर कोई नहीं है। अब इनके अर्थात् शरीर, चित्त तथा अमर आत्मा और अविद्या के कार्य में शरीर की मृत्यु पर व्यावहारिक अविश्वास की घटना का अस्तित्व दर्शाया जाता है।

पुनः, यह क्या बात है कि इस संसार में कोई भी स्वतंत्र नहीं हो सकता, यद्यपि हर एक अपने को स्वतंत्र समझता है, स्वतंत्रता का विचार करता है। सर्वत्र स्वतन्त्रता की अत्यन्त इच्छा की जाती है। आप कहेंगे कि मनुष्य स्वाधीन है। क्या तुम में अनेक अभिलाषायें, प्रलोभन, और विकार नहीं हैं? तो फिर आप अपने को स्वतंत्र कैसे कह सकते हैं? मीठे फल या स्वादिष्ट भोजन आप को गुलाम बना सकते हैं। कोई भी चित्ताकर्षक रंग तुरन्त आप के मन को हर सकता है, मोहित कर सकता है, और आप को गुलाम बना सकता है। लौकिक अभ्युदय का कोई भी ख्याल आप को गुलाम बना सकता है, और फिर भी आप अपने को स्वतंत्र कहते हैं। ज़रा सूक्ष्मता से जाँच कर देखिये कि भला पूरी स्वाधीनता से आप मनमाना कोई काम कर सकते हैं? क्या यह बात नहीं है कि आप के किसी मामले में कोई गड़बड़ होते ही आप का मिजाज बेक़ाबू हो जाता है? आप क्रोध के गुलाम हैं, वृत्तियों के गुलाम हैं। यह क्या बात है कि वास्तव में लोग पूरे स्वतंत्र नहीं हो सकते, और फिर भी वे सदा स्वाधीनता का विचार, स्वाधीनता की बात-चीत करते रहते हैं; और स्वाधीनता उन को बड़ी मधुर है, अत्यन्त वाञ्छनीय और अति प्यारी है।

भारत में रविवार स्वतंत्रता का दिन है, और स्वतंत्रता के ख्याल द्वारा बच्चों को सप्ताह के दिनों की शिक्षा दी जाती है। हर दिन वे अपनी माताओं से पूछते हैं, आज कौन दिन है? वे उनको बताती हैं,

आज सोम, मंगल या बुध है। फिर वे अपने पोरों पर मंगल, बुध इत्यादि गिनना शुरू करते है। अरे! इतवार कब आवेगा?

पृथ्वीतल पर इतना खून क्यों बहाया जाता है? स्वतंत्रता, स्वाधीनता के विचार के कारण। वह कौनसा विचार था जिसकी प्रेरणा से अमेरिकनों ने उससे जिसे वे अपनी मातृभूमि कहा करते थे अपना सम्बन्ध तोड लिया? यह क्या था? स्वाधीनता का विचार। प्रत्येक धर्म का उद्देश्य क्या है? हमारी संस्कृत भाषा मे मोक्ष शब्द है, जिसका अर्थ है मुक्ति, स्वाधीनता, स्वतंत्रता। अरी स्वाधीनता! स्वाधीनता!! स्वाधीनता!!! प्रत्येक मनुष्य इस मधुर स्वाधीनता का भूखा और प्यासा है। और फिर भी ऐसे आदमी कितने है जो वास्तव मे स्वाधीन है? बहुत थोडे।

वेदान्त कहता है, इस जगत् मे आप हर घडी कारागार मे बन्द है—ऐसी कारागार जिस मे तेहरी दीवाले है—काल की दीवाल, देश की दीवाल, और वस्तु की दीवाल। जब आप का प्रत्येक विचार, प्रत्येक कार्य उक्त कारणो की शृंखला से स्थिर होता है, और आप उस ज़ंजीर से बंधे हुए है, तो जब तक आप इस संसार मे निवास कर रहे है, तब तक आप स्वाधीन कैसे हो सकते है? फिर भी स्वाधीनता हर एक और सब की प्रिय वस्तु है। क्या यह विचित्र और विरोधाभास नही है? क्या यह वचन-विरोध नही जान पडता है? यह समझाओ।

वेदान्त कहता है, इसका भी कारण है, और वह कारण आप के अन्दर है, आप से बाहर नही है। आप में स्वाधीनता का यह विचार अर्थात् यह सार्वभौम विचार हमें बताता है कि आप मे कोई चीज़ है; और आप मे वह वस्तु आप का सच्चा स्वरूप या आत्मा, अथवा वास्तविक 'अहं' है, क्योंकि यह स्वाधीनता आप 'मुझ' के लिए, 'मै' के लिए अर्थात् वास्तविक आत्मा के लिए चाहते है, और किसी दूसरे

के लिए नहीं। आप में ऐसी कोई वस्तु है, जो वास्तव में स्वाधीन, असीम और अपरिच्छिन्न है। इस विचार की सार्वभौमिकता स्पष्ट भाषा में प्रचार करती है कि मनुष्य का वास्तविक स्वरूप अर्थात् वास्तविक आत्मा कोई पूर्ण स्वतंत्र वस्तु है। परन्तु उसी तरह की भूल के कारण, जो अज्ञानी लोग पृथ्वी की गति सूर्य पर आरोपित करने और सूर्य की किरणों को पृथ्वी पर लाने में करते हैं—अविद्या के कारण गुणों का परस्पर परिवर्तन करते हैं—हम शरीर, मन, 'स्थूल-शरीर' के लिए स्वाधीनता की प्राप्ति करना चाहते हैं।

इस संसार मे हम एक और अति विचित्र घटना देखते हैं। अपने परिच्छिन्नात्मा की दृष्टि से प्रत्येक मनुष्य इस संसार मे पापी है। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी तरह, किसी न किसी त्रुटि या कमी का ज़िम्मेदार है, और फिर भी अपने सच्चे हृदय से कोई भी अपने को पापी नहीं समझता है। इस विशाल विश्व मे पृथवीतल पर कोई अर्थात् एक भी व्यक्ति अपनी प्रकृति के पापिष्ट होने पर विश्वास नही करता। अपने आन्तरिक हृदय से वह अपने को शुद्ध समझता है। व्यावहारिक जीवन मे कोई भी अपने को पापी नही समझता। ऊपर से यदि तुमने अपने को पापी पुकारा भी तो क्या हुआ। किन्तु तब भी वास्तविक लक्ष्य यही रहता है कि लोग मुझे धर्मात्मा मनुष्य समझे। अपने को पापी कहने का असली मन्तव्य यही होता है कि लोग हमे धर्मात्मा वा पुण्यात्मा कहे; परन्तु अपने अन्तरतम हृदय मे उन्हे अपनी प्रकृति के पापमय होने पर कुछ भी विश्वास नही होता। हर एक अपने विचार से शुद्ध है। न्यायालय में ऐसा प्रश्न होने पर कि "तुमसे पाप हुआ ?" घोर पापी और अपराधी कदाचित् ही कभी कहते हैं "हॉ, हम से पाप हुआ"। यदि लाचार होकर उन्हे पापाचार स्वीकार करना पडता है, तो मामले मे कोई दूसरा ही पेच होता है। यद्यपि बाहर से वे अपने

पाप-कर्म को स्वीकार करते हैं, तथापि अपने हृदयो मे वे अपनी स्वीकृति (confession) को गलत समझते हैं। उन्होंने कोई पाप नहीं किया। यह कैसी बात है? जो लोग देवालय में पुजारी के सामने अपने पापो को स्वीकार करते है, उन्हे भी सडक पर यदि कोई चोर के नाम से पुकारता है, तो वे पलट पडते हैं और उस पर मुकदमा चलाते हैं, अर्थात् अभियोग लगाते हैं और न्यायालय से दण्ड दिलवाते हैं। केवल ईश्वर के सामने, देवालय मे उन्होंने परमात्मा के नेत्रों में धूल झोकने की चेष्टा की थी। केवल देवस्थान मे उन्होंने अपने पाप स्वीकार कर के अपने को पापी कहा था।

यह अद्भुत घटना भी स्पष्ट करती है कि इस संसार मे कितनी बेहूदगी एवं वाक्य विरोध है। यह बेढंगापन कैसे दूर होगा? वेदान्त कहता है, "हम पापी नही है और हम पाप से बहुत परे हैं," इस विचार को निर्मूल कर सकने की हमारी असमर्थता और अपनी प्रकृतियो के निष्पाप होने मे हमारे व्यावहारिक विश्वास की सर्वव्यापकता इस बात के जीते जागते प्रमाण तथा लक्षण हैं कि वास्तविक आत्मा की प्रकृति निष्पाप है अर्थात् सच्ची आत्मा वा वास्तविक जीवात्मा स्वभाव से पाप-हीन, शुद्ध, और पवित्र है। हमारा वास्तविक स्वरूप, अर्थात् वास्तविक आत्मा निष्पाप, विशुद्ध और परम पुनीत है। यदि आप इस व्याख्या को नही मानते, तो इस स्पष्ट वाक्य-विरोध की किसी दूसरी तरह से व्याख्या कीजिये।

यह कैसी बात है कि हर एक मनुष्य बुद्धि से जानता है कि वह संसार का सारा धन नही सञ्चय कर सकता, यथेच्छ धनी नही हो सकता है? यह हम नित्य ही अपने मध्य मे देखते हैं। जो लोग करोडपति प्रसिद्ध हैं, उनसे जाकर पूछिये कि क्या वे संतुष्ट और तृप्त हैं? यदि वे जी खोल कर आपसे बात करेंगे तो कहेंगे कि हम संतुष्ट नही हैं,

तृप्त नहीं है। वे और अधिक, और अधिक, और अधिक धन चाहते हैं। उनके हृदय भी उतने ही स्वच्छ हैं जितने कि उनके, जिनके पास केवल चार डालर (अमेरीकन रुपया) हैं। मन की शांति, संतोष और विश्राम के लिए चार रुपये और चार अरब रुपये में कुछ भी अन्तर नहीं है। ये काम धन के नहीं हैं। यदि धनी होते हुए भी लोग संतुष्ट और शान्त हैं, तो शान्ति का कारण दौलत नहीं है। किन्तु उस शान्ति का कारण अवश्य ही कुछ और होगा, अवश्य ही उसका कारण अनजाने वेदान्त का व्यवहार होगा, और कुछ नहीं। उनकी शान्ति का कारण एक मात्र वही (वेदान्त का व्यवहार) हो सकता है, क्योंकि विभूति में अपने स्वामी को प्रसन्न करने की शक्ति नहीं है।

हमें अब निश्चय है कि दौलत के सञ्चय से, भौतिक सम्पत्ति से शान्ति की प्राप्ति नहीं होती, और फिर भी प्रत्येक मनुष्य अर्थ का भूखा है, अर्थ के लिए छटपटा रहा है। क्या यह विचित्र नियमविरुद्धता नहीं है? इसे समझाइये; कोई भी तत्त्वशास्त्र या धर्म इसे पूरे तर्क में या युक्तिपूर्वक नहीं समझाता। वेदान्त कहता है, यह देखो, सम्पत्ति के लिए अर्थात सब कुछ बटोरने और सञ्चय करने के लिए हाय हाय मची हुई है। यह क्यों? शरीर समस्त संसार को अपने अधिकार में कदापि नहीं ला सकता। यदि सारा संसार भी आपके अधिकार में आजाय, तो भी आपको संतोष न होगा; आप चन्द्रलोक पर अधिकार जमाने की बात सोचने लगेंगे! सारे संसार के शासक सम्राटों का ख़्याल कीजिये। उस नीरो जैसे सम्राटों का ध्यान कीजिए। क्या आप के रोमाञ्च नहीं होता? उन कैसर और नीरो जैसे सम्राटों की मानसिक अवस्थाओं का विचार कीजिये। क्या वे सुखी थे? क्या वे संतुष्ट थे? उनमें से एक (नीरो) खाता है, वह खाने का शौक़ीन है

और हर घड़ी एक से एक स्वादिष्ट भोजन उसके लिए तैयार रहते है। वह एक पदार्थ जी भर के खाता है और अब उसके पेट मे जगह नहीं है। उसके पास वमन करने की औषधियाँ है, और उनमे वह अभी खाया हुआ पदार्थ कै कर देता है। अब दूसरे पदार्थ उसके पास लाये जाते हैं, और वह फिर इच्छा भरके खाता है। यह सब केवल रुचि की तृप्ति के लिए। इस तरह वह समस्त दिन खाता और वमन करता रहता है। क्या वह तृप्त हुआ? क्या उसे शान्ति मिल गई? नाम मात्र को भी नहीं। हमे इसका निश्चय है। नही, सम्पूर्ण ससार के अधिकारी हम नहीं बन सकते, और यदि बन भी जॉय तो भी क्या परिणाम होगा? सम्पूर्ण संसार को प्राप्त कर यदि आपने अपनी आत्मा खो दी, तो क्या फल हुआ? ज्योतिष-विद्या-विषयक गणनाओं मे स्थिर नक्षत्रो के साथ जब हम व्यवहार करते है, उस समय आप की यह पृथिवी एक विन्दु मात्र होती है। यह पृथिवी गणितशास्त्रीय परिमाण-रहित विन्दु मात्र समझी जाती है।

आपकी यह पृथ्वी क्या है? इस पृथ्वी पर अधिकार होने से वास्तविक तृप्ति अथवा वास्तविक शान्ति कैसे मिल सकती है? यद्यपि बुद्धि की ओर से हम यह जानते है, तथापि इस ऐश्वर्य के पीछे बिना झपटे हम नहीं मान सकते। वेदान्त कहता है, इसका कारण यही है कि आपका वास्तविक आत्मा अर्थात् आप मे वास्तविक 'अहं' वस्तुतः सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी है। इसी कारण से तुम अपने को सारे ससार का मालिक देखना चाहते हो।

भारत मे एक महाराजा की कथा प्रचलित है, जो अपने पुत्र द्वारा कारागार मे डाल दिया गया था। उसका पुत्र सम्पूर्ण राज्य का अधिकारी बनने का अभिलाषी था, इसी लिए वह क़ैदख़ाने मे बन्द किया गया था। पुत्र ने अपनी धन की भूख बुझाने के लिए पिता को जेल-

खाने डाला था। एक बार पिता ने अपने ही पुत्र को कुछ विद्यार्थी भेज देने को लिखा ताकि विद्यार्थियों को पढ़ाकर वह अपना मनोरञ्जन कर सके। इस पर पुत्र ने कहा, "इस मनुष्य अर्थात् मेरे पिता की सुनते हो? वह इतने वर्षों तक साम्राज्य का शासन करता रहा है और अब भी हुकूमत करने की अपनी पुरानी आदत उससे नहीं छोड़ी जाती। वह अब भी विद्यार्थियों पर शासन करना चाहता है, कोई न कोई उसे शासन करने के लिए चाहिए। वह अपनी पुरानी आदतें नहीं त्याग सकता।"

यही बात है। हम अपनी पुरानी आदतें कैसे त्याग सकते हैं? पुराना अभ्यास हम में चिपटा रहता है। हम उसे दूर नहीं कर सकते। आप का वास्तविक आत्मा वा सम्राट शाहजहां (इस शब्द का अर्थ है, 'सारे संसार का शासक', और इस प्रकार उस सम्राट् शाहजहां के नाम का अर्थ है, सम्पूर्ण विश्व का सम्राट्) विश्व अर्थात् ब्रह्माण्ड का सम्राट् है। अब आपने सम्राट् को एक बन्दीखाने में, अपने शरीर की अन्धी कोठरी में, अथवा अपने परिच्छिन्न-आत्मा की हदबन्दी में डाल रक्खा है। वह वास्तविक आत्मा, वह विश्व का सम्राट् अपने पुराने अभ्यासों को भला कैसे भूल सकता है? वह अपने स्वभाव को कैसे त्याग सकता है? किसी में भी अपनी प्रकृति को दूर कर देने की शक्ति नहीं है। इसी प्रकार आत्मा अर्थात् आप का असली स्वरूप आपमें असली तत्त्व वा अपने स्वभाव को भला कैसे छोड़ सकता है? आपने उसे कारागार में बन्द कर रक्खा है, किन्तु कारागार में रहते हुए भी वह सारे संसार पर अधिकार करना चाहता है, क्योंकि समग्र ब्रह्माण्ड उसका था। वह अपनी पुरानी आदतों को नहीं छोड़ सकता। यदि आप चाहते हैं कि आकांक्षा का यह भाव, अथवा यह लोभ दूर होजाना चाहिए, यदि आपकी इच्छा है कि इस संसार के लोगों का लिप्सा-भाव

जाता रहे, तो क्या आप उन्हे ऐसा करने का उपदेश दे सकते हैं? असम्भव !

कुछ कटु बातें कहने के लिए आप राम को क्षमा करेंगे, परंतु सत्य कहना ही होगा। राम सत्य का व्यक्तियों से अधिक आदर करता है। सत्य कहना ही चाहिए। बाइबिल मे मैथ्यू के पाँचवे अध्याय मे, पहाड़ी पर उपदेश (Sermon on the Mount) में कहा गया है, "यदि आप के एक गाल पर कोई थप्पड जमावे, तो दूसरा भी उसकी ओर कर दीजिये"। जब आपको पवित्र सिद्धान्तो का प्रचार करना हो तब अपने पास धन न रखिये ; नंगे पैर, नंगे सिर जाना चाहिए। यदि न्यायालय मे आप बुलाये जाय तो जाने के पहले यह न सोचिये कि आपको क्या कहना पड़ेगा। अपना मुँह खोलिये और वह भर जायगा। उद्यान के फूलों और वन के पक्षियों को देखिये। वे दूसरे दिन का कोई विचार नहीं करते, परन्तु कोकावेलियो और गौरैय्यो को ऐसे वस्त्र पहनने को मिलते है कि 'सालोमन' भी स्पर्धा करे। क्या आपकी बाइबिल में यह वर्णन नहीं है कि "ऊँट चाहे सुई की नोक से निकल जाय, परन्तु धनी के लिए स्वर्ग के राज्य की प्राप्ति असम्भव है।" क्या आपने बाइबिल मे नहीं पढ़ा है कि "एक धनी आदमी ने आकर ईसामसीह से दीक्षित होने की इच्छा प्रकट की" और ईसामसीह ने कहा, "तुम्हारे लिए एक ही उपाय है; दूसरा कोई नहीं। अपनी सब दौलत तुम लुटा दो। इतना करने ही से तुम्हे शान्ति मिल सकती है"? त्याग का यह भाव, यह अध्याय, जो कम से कम भारत मे और सारे संसार में, धर्म प्रचारकों (मिशनरियों) द्वारा बहुत पीछे रक्खा जाता है, यह अध्याय वेदान्त की और उन उपदेशों की शिक्षा देता है जिनका पालन आज भी भारतीय साधु करते हैं। उस पवित्र धर्म के नाम में, त्याग की उस शिक्षा के नाम मे ज़रा उन लोगो पर ध्यान

दीजिये जो भारत मे आचार्य और धर्म-प्रचारको की हैसियत से जाते हैं। राम को कृपया आप क्षमा करे। यदि आप आत्मा को शरीर में समझते हैं, तो किसी को रुष्ट न होना चाहिए। किसी को ज़रा सा भी रुष्ट होने का अधिकार नहीं है, यदि उसके तुच्छ शरीर के विरुद्ध कुछ कहा जाता है।

क्या यह विस्मय की बात नही है कि त्याग के नाम पर भारतवर्ष जाने वाले लोग नित्य गाडियो पर आराम करे, शानदार महलो मे रहें, और बारह चौदह सौ रुपये महीने वेतन लेकर राजसी ठाठ से रहते हुए कहे कि हम त्याग के धर्म का प्रचार और उपदेश करते हैं? क्या यह विचित्रता नही है? वेदान्त कहता है कि मञ्च पर से किसी प्रकार की शिक्षा या प्रचार के द्वारा आप धन संचय और प्रत्येक वस्तु के अधिकारी बनने के विचार का दमन नहीं कर सकते। तुम इसका दमन नही कर सकते, क्योंकि अपने वास्तविक आत्मा का सार्वभौम प्रभुत्व अथवा विश्वव्यापी एकराजाधिपत्य तुम नाश नहीं कर सकते। किन्तु क्या यह रोग असाध्य है? क्या इस रोग की कोई औषधि वा कोई प्रतिकार नही है? है, है। इस घोर पाप का कारण अज्ञान है, जिस अज्ञान के कारण आप आत्मा का गौरव शरीर पर आरोपित करते हैं, और दूसरी ओर शरीर के क्लेश को आत्मा पर आरोपित करते हैं। इस अज्ञान को दूर करो और निर्धन होता हुआ भी मनुष्य तुम्हे समृद्धि-शाली दिखाई पड़ेगा, और सम्पत्ति या भूमि से हीन होता हुआ भी मनुष्य तुम्हे सम्पूर्ण संसार का महाराजा दिखाई पडेगा। जब तक अविद्या वर्तमान है तब तक आप मे लोभ और आकाक्षा रहेगी ही। इसका कोई उपाय नही है, कोई इलाज नहीं है। इस ज्ञान को प्राप्त करो, इस दवी-बुद्धिमत्ता को प्राप्त करो, और आत्मा को बन्धनमुक्त करो, उसे क़ैदखाने से तुरन्त निकालो। उसे स्वाधीन करो। इसका आशय यह

है कि अपना सच्चा, नित्य, अनन्त आत्मा का (जो ईश्वर है, स्वामी है, विश्व का शासक है) अनुभव करो। ऐसा अनुभव करो, और तुम पवित्रो के पवित्र अर्थात् महापवित्र हो जाते हो, और लौकिक वसुधा या सासारिक ऐश्वर्य के विचार को स्थान देना भी आप को पाप-कर्म तथा अपमानजनक समझ पड़ेगा।

संसार के उन सब देशो को जीतने के बाद, जो उसे ज्ञात थे, जब सिकन्दर भारत मे आया तो उसने विलक्षण भारत-वासियो को, जिनकी चर्चा उसने बहुत सुनी थी, देखने की इच्छा प्रकट की। सिंधु नदी के तट पर किसी साधु या आचार्य के पास लोग उसे ले गये। साधु बालू पर नंगे-सिर, नंगे-पैर, नंगे-बदन पडा हुआ था और यह भी पता नही कि कल भोजन उसे कहा से मिलेगा। इस दशा मे पडा हुआ वह घाम खा रहा था। महान् (आजम) सिकन्दर उसके निकट अपने पूरे गौरव से युक्त खडा हो गया है, ईरान से उसने जो ज्वाज्वल्यमान रत्न और हीरे पाये थे उनसे जटित उसका मुकुट चमचमा रहा है, प्रकाश फैला रहा है। और उसीके निकट बिना वस्त्र के वह साधु बैठा था। कितना अन्तर है, कितना भेद है! एक ओर तो सारे संसार के वैभव का प्रतिनिधि-स्वरूप सिकन्दर का शरीर, और दूसरी ओर सारी गरीबी का प्रतिनिधि स्वरूप महात्मा है किन्तु उनकी वास्तविक आत्माओ की ग़रीबी या अमीरी के यथार्थ ज्ञान के लिए केवल उनके मुखमण्डलो की ओर आपको देखने की ज़रूरत है।

भाइयो और बहनो! अपने घावो को छिपाने के हेतु तुम ऐश्वर्य के लिए हाय हाय करते हो; उन (घावो) को ढकने के लिए तुम पट्टी बाधते हो। इस एक साधु को देखिये, जिसकी आत्मा धनाढ्य थी; इसी साधु को देखिये, जिसे अपनी आत्मा की अमीरी और गौरव का अनुभव हो गया था। उसके पास महान् सिकन्दर खड़ा है, जो अपनी

आन्तरिक दीनता को छिपाना चाहता है। महात्मा के प्रभापूर्ण, प्रसन्न, आनन्दमय चेहरे की ओर देखिये। महान् सिकन्दर उसकी सूरत से चकित हो गया। वह उस पर आसक्त हो गया और उसने महात्मा से यूनान चलने को कहा। साधु हंसा, और उसने उत्तर दिया, "संसार मुझ में है, मैं संसार में नहीं आ सकता। विश्व मुझ में है, मैं विश्व में बद्ध नहीं हो सकता। यूनान और रूम मुझ में हैं। सूर्य और नक्षत्र मुझ में उदय और अस्त होते हैं।"

महान् सिकन्दर इस प्रकार की भाषा का अभ्यासी न होने के कारण विस्मित हुआ। उसने कहा, "मैं तुम्हें धन दूंगा। सांसारिक सुखों से मैं तुम्हें डुबा दूँगा। सब तरह के पदार्थ, जिनकी लोग इच्छा करते हैं, सब तरह के पदार्थ, जो लोगों को मोहते और अपना दास बनाते हैं, बहुतता से तुम्हें प्राप्त होंगे। कृपया मेरे साथ यूनान चलिये।"

महात्मा उसके उत्तर पर खूब हंसा और बोला, "ऐसा कोई हीरा या सूर्य या तारा नहीं है, जिसके प्रकाश का कारण मैं नहीं हूं। सम्पूर्ण नक्षत्रों के गौरव का कारण मैं हूँ। समस्त इच्छित वस्तुओं की मोहनी वा चित्ताकर्षक शक्ति मुझसे है। पहले तो इन पदार्थों को गौरव और मनोहरता मैंने प्रदान की, और अब इन्हें ढूँढता फिरूँ? सांसारिक धनिकों के द्वारों पर माँगता फिरूं? सुख और आनन्द पाने के लिए पाशविक वृत्तियों और स्थूल शरीर के दरवाज़ों पर हाथ फैलाऊं? यह मेरी मर्यादा के विरुद्ध है, मेरे लिए अपमान-जनक है। यह मेरी शान के खिलाफ है। मैं इतना नीचा कभी नहीं झुक सकता। नहीं, मैं उनके द्वारों पर जाकर हाथ नहीं पसार सकता।"

इससे महान् सिकन्दर आश्चर्य में पड गया। उसने अपनी तलवार खींच ली और साधु का सिर उड़ा देना ही चाहता था कि अब तो साधु ठट्ठा कर हंसा और बोला, "ऐ सिकन्दर! तू ने अपने जीवन में इतनी

झूठी बात कभी नही कहो, ऐसा घृणित मिथ्यालाप कभी नहीं किया। मुझे मार, मुझे मार, मुझे मार। वह तलवार कहाँ है जो मुझे मार सकती है? वह कौन सा अस्त्र है; जो मुझे घायल कर सकता है? ऐसी कौन सी विपत्ति है, जो मेरी प्रसन्नता को नष्ट कर सकती है? वह कौन सा रंज है, जो मेरे आनन्द मे विघ्न डाल सकता है? नित्य, आज, कल और सदा एकरस, पवित्रो में पवित्रो और शुद्ध मे शुद्ध, विश्व-ब्रह्माण्ड का प्रभु हूँ, मै वही हूँ, मै वही हूँ। ऐ सिकन्दर! जो शक्ति तुम्हारे हाथो को चलाती है वह मै ही हूँ। तुम्हारे इस शरीर के मर जाने पर भी मै वहा शक्ति, जो तुम्हारे हाथो को चलाती है, बनी रहती हू। मै ही वह शक्ति हूं, जो तुम्हारी नसो को हरकत देती है।" सिकन्दर के हाथ से तलवार छूट पडी।

इससे हमे पता चलता है कि त्याग के भाव का लोगो को अनुभव कराने का केवल एक ही उपाय है। लौकिक दृष्टि से हम तभी सर्वस्व त्यागने को तैयार होते हैं जब दूसरी दृष्टि से हम धनी हो जाते है। "गरीबी मे जो कुछ मिलता है वह टिकाऊ होता है" क्या आपने अशंकनीय (unquestionable) वैज्ञानिक नियम नही सुना कि "what is gained in poverty is lasting? बाहरी हानि अथवा बाहरी त्याग की प्राप्ति तभी होती है जब भीतरी पूर्णता, आन्तरिक स्वामित्व या सम्राटत्व की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

इस संसार मे क्रोध का अस्तित्व क्यो है? हम नित्य बड़े बड़े उपदेश सुनते है कि हमे क्रोध कभी न करना चाहिए, निर्बलता को कभी न पास फटकने देना चाहिए। इस आशय के उपदेश हम नित्य सुनते हैं; तथापि जब अवसर पडता है, तब हम दब जाते है। ऐसा क्यो है? क्रोध, द्वेष, अपनी बडाई वा प्रशंसा तथा अन्य पाप क्या हैं?

इन सब पापो की व्याख्या भी वेदान्त उसी प्रणाली और सिद्धान्त पर करता है। इन सब पापो पर ब्यौरेवार विचार करने का शायद समय नही है। यदि आप इस सम्बन्ध में अधिक जानना चाहते हैं, तो राम के पास आइये। आप को सब पापो का कारण और निदान भली भाति समझा दिया जायगा। परन्तु अब समय बहुत थोडा रह गया है, इस लिए राम सब का साराश कहेगा। अब आपका ध्यान विशेष करके इस तथ्य की ओर खीचा जाता है कि इन सब पापो का कारण अविद्या है, जिस के कारण आप वास्तविक आत्मा को स्थूल शरीर तथा चित्त के साथ एक कर देते हैं। इस अज्ञान को त्यागो और इन पापो का कही पता भी न लगेगा। यदि इन पापो को आप किसी और उपाय से दूर करना चाहेगे तो आपका प्रयत्न अवश्य असफल होगा, क्योकि कोई भी पदार्थ नष्ट नही किया जा सकता। अज्ञान का निस्सन्देह नाश किया जा सकता है। अविद्या को हम हटा सकते हे। जन्म लेने पर बच्चे इस ससार की अनेक बातो से अनभिज्ञ होते हैं। किन्तु हम देखते हैं कि क्रमशः अनेक विषयो के सम्बन्ध मे उनकी अज्ञानता घटती जाती है। केवल अज्ञान दूर किया जा सकता है।

ऐसी दशा में, एक ऐसी शक्ति है जो आपको क्रोध दिलाती है, और आपमें आकाक्षाये पैदा करती है, पाप करवाती है, और जिसकी प्रेरणा से आप धन-सञ्चय करते हैं। आप अपने उपदेशो और शिक्षाओ से इस शक्ति को किसी तरह भी नही मिटा सकते, आप इसे दमन नहीं कर सकते, आप इसे कदापि दबा नहीं सकते, क्योंकि शक्ति वही है। वेदान्त कहता है, हम इस शक्ति को आत्मा में घटा सकते हैं। इसका दुरुपयोग न कीजिये। इसका उचित प्रयोग कीजिये। आप में जो असली तत्व है, जो शुद्ध आत्मा है, जो अद्वितीय है, जो समग्र संसार का मालिक है, उसी की यह शक्ति है।

हर एक स्वतंत्र वा स्वाधीन होना चाहता है। और स्वाधीनता के भाव का, स्वाधीनता की आकाङ्क्षा का प्रधान लक्षण, मूल रूप क्या है? वह है उस उंचाई पर उठना, जहा द्वन्द्व नही है। वास्तविक आत्मा की शक्ति चाहती है कि आप उस अवस्था को प्राप्त करे जहा आपको पूरी स्वाधीनता है, अर्थात् जहा आपका कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं है; जहा आपकी बराबरी का कोई नही है। आत्मा, अर्थात् वास्तविक आत्मा का कोई प्रतिद्वन्द्वी नही है। यदि आप सासारिक स्वार्थपरता या आत्म-श्लाघा के विचार से पीछा छुटाना चाहते हैं, तो आप असली शक्ति को हटा और नाश नही कर सकते। किसी भी शक्ति का नाश नही किया जा सकता। न नित्य आत्मा का ही विनाश किया जा सकता है। प्रत्येक वस्तु का आप दुरुपयोग कर सकते हैं और स्वर्ग को नरक बना सकते हैं।

एक पादरी अर्थात् इङ्गलैंड के ईसाई पादरी की कहानी है। कुछ महापुरुषो, अर्थात् बड़े वैज्ञानिको, डार्विन और हक्सले की मौतो का हाल उसने पढा। वह अपने मन मे विचारने लगा कि वे स्वर्ग गये या नरक। वह इस विचार मे ख़ूब मग्न था। उसने अपने मन मे कहा, "इन लोगो ने कोई पाप नहीं किये, परन्तु इन्हे बाइबिल पर वा ईसा मसीह पर विश्वास नही था, और यथार्थ मे ये ईसाई नहीं थे। वे अवश्य नरक गये होगे।" परन्तु इस विचार पर वह दृढ न हो सका। वह सोचता है, "वे अच्छे लोग थे, संसार मे उन्होंने कुछ अच्छा काम किया था, वे नरक के पात्र नही थे। तो फिर वे गये कहाँ?" वह इसी प्रकार विचार करते करते सो गया और उसने एक अत्यन्त अद्भुत स्वप्न देखा। उसे स्वप्न हुआ कि वह स्वयं मरा और श्रेष्ठ स्वर्ग में पहुँचाया गया। वहा उसे वे सभी दिखाई पड़े जिन्हे पाने की उसने आशा की था; जो ईसाई भाई उसके गिर्जे मे आते थे वे सब

उसे दिखाई पड़े। उनसे उसने इन वैज्ञानिकों, हक्सले और डार्विन के सम्बन्ध मे पूछा। स्वर्ग के द्वारपाल या किसी अन्य कार्याधीश (steward) ने कहा, वे घोरतम नरक मे हैं।

अब इस पादरी ने पूछा, केवल उन्हे देखने और पवित्र बाइबिल की शिक्षा देने तथा यह बताने के लिए कि बाइबिल की आज्ञाओ पर विश्वास न करके उन्होने घोर पाप किया था, क्या क्षण भर के लिए मुझे घोरतम नरक मे जाने की अनुमति मिल सकती है? कुछ वाद विवाद के बाद कार्याधीश ढीला पडा और उक्त पादरी के लिए घोरतम नरक का प्रवेशपत्र ला देना स्वीकार किया। आप को आश्चर्य होगा कि स्वर्ग और नरक मे भी आप अपनी रेलगाडियो मे आते जाते है, पर बात ऐसी ही है। उस मनुष्य का पालन-पोषण ऐसे स्थान मे हुआ था जहाँ रेल-व्यापार और तार की भरमार थी। अतएव यदि उसके विचारो मे, उसके स्वप्नो मे नरक और स्वर्ग से रेलो का मेलजोल हो गया, तो कोई आश्चर्य नही।

अच्छा, इस पादरी को पहले दरजे का टिकट मिला। रेलगाडी चली ही जा रही है। बीच मे कुछ स्टेशन थे, क्योंकि सर्वोच्च स्वर्ग से निम्नतम नरक को उसे जाना था। बीच के स्टेशनो पर वह ठहरा और देखा कि ज्यो ज्यो नीचे उतर रहा हूँ त्यो त्यो दशा बिगडती ही जाती है। जब वह उस नरक में पहुँचा जहाँ से सब से नीचा नरक सिर्फ दूसरा था, तो वह अचेत हो गया। ऐसी घोर दुर्गन्ध आ रही थी कि यद्यपि सारे रूमाल और अंगोछे उसने नथुनो मे लगा लिये फिर भी वह बेहोश हो ही गया, उसे मूर्छा आ गई। इस नरक में लोग इतना हाय हाय कर रहे थे, रो और चिल्ला रहे थे तथा दात कटकटा रहे थे कि वह सह न सका। इन दृश्यो के कारण वह अपनी आँखे खुली न रख सका। सब से नीचे का नरक देखने के निमित्त अपने आग्रह के लिए वह पछताने लगा

कुछ ही मिनटों में यात्रियों के सुभीते के लिए रेल के चौतरे (प्लैटफार्म) पर लोग चिल्ला रहे थे, "सब से नीचा नरक, घोरतम नरक"। स्टेशन की दीवालों पर खुदा हुआ था, "सब से नीचा नरक"। किन्तु पादरी विस्मित हुआ। उसने सब से पूछा, "यह घोरतम नरक कैसे हो सकता है? यह स्थान तो दिव्यतम स्वर्ग के लगभग होगा। नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता। यह सब से नीचा नरक नहीं है, यह सब से नीचा नरक नहीं है, यह तो स्वर्ग है"। रेल का रक्षक (गार्ड) या संचालक ने उससे कहा, "यही स्थान है," और एक आदमी ने आकर कहा, "महाशय, उतर पड़िये, आपका निर्दिष्ट स्थान यही है।"

वह बेचारा उतर तो पड़ा परन्तु बड़ा चकित हुआ। उसने आशा की थी कि यह सब से नीचे का नरक अपने पूर्ववाले से बुरा होगा। किन्तु यह तो उसके अपने सर्वोपरि स्वर्ग के प्रायः समान ही था। वह रेल के स्टेशन से बाहर निकला और वहाँ उसने सुन्दर बगीचे देखे, जिनमें सुगन्धित पुष्प खिले हुए थे; और शीतल मन्द-सुगन्ध पवन के झकोरे उसके मुख पर लगने लगे। उसे एक लम्बा भद्रपुरुष मिला। उसका नाम उसने पूछा, और सोचा कि इस आदमी को तो पहले भी मैं देख चुका हूँ। वह आदमी उसके आगे जा रहा था और पादरी पीछे पीछे। जब वह मनुष्य बोला तो पादरी प्रसन्न हुआ। दोनों ने हाथ मिलाये और पादरी ने उसे पहचान लिया। यह कौन आदमी था? यह हक्सले था। उसने पूछा "यह कौन स्थान है, क्या यही निम्नतम नरक है?" हक्सले ने उत्तर दिया, "हाँ, यही है"। तब उसने कहा, "मैं तुम्हें उपदेश देने आया था, परन्तु पहले यह बताओ कि यह बात क्या है जो ऐसा चमत्कार मैं देख रहा हूँ"। हक्सले ने कहा, "महा भीषण अवस्था विषयक तुम्हारा अनुमान अनुचित

नहीं था। वास्तव में जब हम यहाँ आये थे तो यही विश्व-ब्रह्माण्ड का अति रौरव नरक था। इससे अधिक अवाञ्छनीयता की धारणा नही हो सकती थी"। और उसने कुछ स्थानों को दिखाकर कहा, "ये गन्दी खाइयाँ थी"। दूसरे स्थल को दिखाकर उसने कहा, "वहाँ तपा हुआ लोहा था"। एक और स्थान को दिखलाकर कहा, "यहाँ गरम बालू थी, और वहाँ बहुत बदबूदार गोबर था"।

उसने कहा, "पहले हम अत्यन्त गन्दी खाइयो में डाल दिये गये, परन्तु वहाँ रहते हुए हम पास के जलते हुए लोहे पर पानी फेकते रहे। और हम नालो के मैले पानी को किनारों पर पडे जलते हुए लोहो पर उलचने का काम करते रहे। तब घोरतम नरक के कार्याध्यक्ष लाचार होकर हमे उस स्थान पर ले गये जहाँ जलता हुआ तरल लोहा था। किन्तु जब तक वे हमे वहाँ ले गये, तब तक बहुत सा लोहा बिलकुल ठण्डा हो गया था, बहुत सा लोहा हथियाया जा सकता था, परन्तु फिर भी बहुत सा लोहा तरल अर्थात् जलती हुई अग्निमय दशा मे था। तब जो लोहा बुझकर ठण्डा हो गया था उसकी सहायता से और उसे आँच के सामने करके हम कुछ कलें और दूसरे औज़ार बनाने मे समर्थ हुए"। इसके बाद हमे उस तीसर स्थान पर जाना था जहाँ गोबर था। वहा हम पहुँचाये गये, और अपने औज़ारो, लोहे के फावडे और कलो से हमने खोदने का काम शुरू कर दिया। तदुपरान्त हम दूसरे प्रकार की ज़मीन पर पहुँचाये गये, और वहा अपने तैयार किये औज़ारो और कलो की सहायता से वहा की कुछ चीजे हमने उस भूमि में डालीं। इन्होने खाद का काम दिया और इस तरह धीरे धीर हम इस नरक को सच्चा स्वर्ग बनाने में समर्थ हुए"।

बात यह है कि घोरतम नरक में सब पदार्थ ऐसे वर्तमान थे, जो केवल अपने उचित स्थानो पर रख दिये जाने से ही दिव्य स्वर्ग बना

सकते थे। वेदान्त कहता है—यही बात है, तुम मे परमेश्वर वर्तमान है, और तुम मे निरर्थक शरीर मौजूद है, परन्तु तुमने वस्तुओं को स्थान-भ्रष्ट कर दिया है। तुमने चीज़ों को ऊपर-नीचे कर दिया है, तुमने उन्हें उलटा-पुलटा रख दिया है। तुमने गाडी को घोडो के आगे रख दिया है। और इस तरह इस संसार को तुम अपने लिए नरक बनाते हो। तुम्हे न तो कोई वस्तु नष्ट करना है, और न कोई चीज़ खोदना है। अपनी इस आकाङ्क्षामय भावना को अथवा इस स्वार्थपरता को, या अपनी इस क्रोध-वृत्ति को, या अपने किसी दूसरे दूषण को, जो ठीक स्वर्ग या नरक के तुल्य है, तुम नष्ट नही कर सकते; परन्तु यथाक्रम स्थान पर उन्हे रख सकते हो। किसी शक्ति का विनाश नहीं किया जा सकता; परन्तु इस नरक को तुम फिर से सॅवार सकते हो और इसे दिव्य स्वर्ग मे बदल सकते हो।

वेदान्त कहता है, यही एक ऐसा जादू है जो कारागार के कपाट खोल सकता है, यही एक मात्र उपाय है ससार से सब संकट निकाल देने का। उतरे हुए चेहरो, मलिन और उदास तबीयतो से मामले नहीं सुधरते। सब पापो से बचने और किसी भी प्रलोभन में न फॅसने का एक मात्र उपाय है सत्य आत्मा का अनुभव (प्राप्त) करना। जब तक आप इस बाह्य गौरव और महिमा का, जो आप को आकर्षित करती है, और आप पर जादू डालती है, त्याग न कर लेंगे, तब तक आप पाशविक वृत्तियो को कदापि न रोक सकेंगे। जब आप को आत्मा का अनुभव हो जायगा, तब आप सब दुर्वृत्तियो से परे हो जाँयगे, और साथ ही साथ बिलकुल स्वतन्त्र वा नितान्त स्वाधीन तथा आनन्द से पूरी तरह परिपूर्ण हो जाँयगे। और यही है स्वर्ग!

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

सम्पादकीय टिप्पणी

[२० दिसम्बर १६०२ को 'एकेडेमी आफ साइसेज़' मे इस व्याख्यान की दूसरी आवृत्ति हुई । दूसरी आवृत्ति के मार्के के वाक्य अगले पन्ने मे "पाप के पूर्व लक्षण और निदान" शीर्षक एक प्रकार से इसी व्याख्यान के सिलसिले मे हैं ।]

पूर्ववर्ती व्याख्यान के सिलसिले में—

पाप के पूर्व लक्षण और निदान।

——:०:——

[ता० २० दिसम्बर १६०२ को एकेडेमी आफ़ साइंसेज़–अमेरिका में दिया हुआ व्याख्यान।]

——:०:——

गँदली गढैया में रहने वाली मुरगाबी के पंखों या शरीर के छूने पर आपको मालूम होगा कि वे सूखे हैं, पानी की रङ्गत या कीचड का उन पर नाम मात्र भी असर नहीं पडा है, वे सूखे हैं। वे भीगते नहीं। वेदान्त कहता है, "ऐ मनुष्य! इसी तरह तुझ में भी ऐसी कोई वस्तु है, जो निर्मल है, जो शरीर के अपराधों, पापों, और दुर्बलताओं से कभी दूषित नहीं होती"। इस दुष्टतामय (पापमय) और आलस्यपूर्ण संसार में वह (वस्तु) विशुद्ध रहती है। ग़लती कहाँ होती है? निष्पाप अवस्था वास्तव में शुद्ध स्वरूप अर्थात् आत्मा का गुण है, परन्तु भूल से व्यवहार में यह गुण शरीर पर आरोपित किया जाता है। इस शरीर और चित्त को शुद्ध समझने के भाव की उत्पत्ति कहाँ से हुई? लोगों के दिलों में इसे किसने जमाया? किसी दूसरे ने नहीं,—वस्तुतः किसी दूसरे ने नहीं। न कोई शैतान, न कोई बाहरी पिशाच इसे आप के दिलों में जमाने आया। यह तुम्हारे भीतर है। कारण स्वयं कार्य में ही होना चाहिए। वे दिन बीत गये जब लोग अद्भुत

घटना का कारण घटना से बाहर ढूंढ़ते थे। किसी मनुष्य के गिर पड़ने पर कारण प्रेत बताया जाता था; गिरने का कोई कारण मनुष्य से बाहर बतलाया जाता था। वे दिन गुज़र गये। विज्ञान और तत्त्व-शास्त्र में ऐसी व्याख्यायें मान्य नहीं हैं। स्वयं घटना के अन्दर हमें व्याख्या ढूंढ़नी चाहिए। हम जानते हैं कि शरीर पापमय है, सदा अपराधी है, फिर भी हम अपने को निष्पाप समझते हैं। लोग इस अद्भुत घटना की व्याख्या कैसे करते हैं? वेदान्त कहता है, "किसी बाहरी शैतान का आश्रय लेकर इसे मत समझाओ, इसे बाहरी पिशाचों पर आरोपित कर इसकी व्याख्या मत करो। नहीं, नहीं। कारण तुम्हारे भीतर है। तुम्हारे भीतर पवित्रों का भी पवित्र और निष्पाप स्वरूप आत्मा है, जो आप को अपने अस्तित्त्व का बोध कराता रहता है, जो नष्ट नहीं किया जा सकता, त्यागा नहीं जा सकता और जिसके बिना रहना असम्भव है। शरीर कितना ही अपराधी अथवा कितना ही पापमय क्यों न हो, वास्तविक आत्मा और उसकी निष्पापता तो वहाँ है ही। वह अपना बोध करावेगी ही। वह वहाँ है, उसका विनाश नहीं किया जा सकता"।

अब हम भिन्न भिन्न पापों, अर्थात् पाप कहे जाने वाली विविध घटनाओं की ओर आते हैं।

खुशामद:—इसे हम सबसे पहले लेते हैं। इसे घोर पाप तो नहीं समझा जाता, परन्तु है यह पाप सार्वभौमिक।

यह क्या बात है कि तुच्छ से तुच्छ कीड़े से लगा कर ईश्वर तक को ख़ुशामद पसन्द है? यह क्या बात है कि प्रत्येक प्राणी ख़ुशामद का गुलाम है, स्तुति, लल्लो-चप्पो, और हाँजी-हाँजी चाहता है? प्रत्येक चाहता है कि वह बहुत कुछ समझा जाये; ऐसा क्यों है?

कुत्ते भी जब तुम उन्हें पुचकारते और थपथपाते हो तो बड़े

ही प्रसन्न होते है । उन्हे भी ख़ुशामद पसन्द है । घोडो को चाटुकारिता (flattery) प्रिय है । घोड़े का मालिक आकर जब उसे प्यार से चुमकारता तथा पीठ ठोकता है, तो वह अपने कान खडे करके उत्साह से भर उठता है ।

भारत मे कुछ राजा शिकार मे कुत्तो के बदले चीतो से काम लेते हैं, और शिकार को तीन ही छलागो मे पकडना चीते का स्वभाव है। यदि उसने शिकार (तीन छलागों मे) पकड लिया तो बहुत अच्छा, नही तो चीता हताश होकर बैठ जाता है । ऐसे अवसरो पर राजा-महाराजा आकर चीते को थपथपाते और चुमकारते हैं और तब फिर उसमे शक्ति भर जाती है। हम देखते हैं कि चीतो को भी खुशामद पसन्द है । ऐसे आदमी को ले लीजिए जो किसी काम का नही अर्थात् व्यर्थ है । उसके पास जाइये और हॉ मे हॉ मिलाकर उसका दिल बढाइये, उसकी खुशामद कीजिये । ओः ! उसका चेहरा प्रसन्नता से चमचमा उठता है । तुरन्त ही आपको उसके गालो पर लालिमा दिखाई पड़ेगी ।

जिन देशो मे लोग देवताओ की पूजा करते है, वहाँ हम देखते है कि वे (देवगण) भी चाटुकारिता से तुष्ट होते है । और कुछ एकेश्वरवादियो (monotheists) की प्रार्थनाओ का भी क्या अर्थ है ? उनकी स्तुतियॉ व उनके आवाहन-मन्त्र क्या है ? उनकी परीक्षा कीजिये । निःस्वार्थ भाव से तथा पक्षपात-बुद्धि को त्याग कर उनकी परीक्षा कीजिये, और आप देखेंगे कि खुशामद के सिवाय वे कुछ नही है । यह क्या बात है कि चाटुकारिता सार्वभौमिक है । प्रत्येक प्राणी ख़ुशामद को पसन्द करता है, परन्तु साथ ही एक भी मनुष्य उस तरह की ख़ुशामद का पात्र नही होता, जो उसे खुश करती है । एक भी मनुष्य उन अनावश्यक प्रशंसाओ की योग्यता नही रखता जो उसके प्रशंसक उसकी किया करते हैं । वेदान्त यह कहकर इसकी व्याख्या करता है कि प्रत्येक व्यक्ति मे

अर्थात् प्रत्येक मनुष्य मे वास्तविक स्वरूप अर्थात् सत्य आत्मा है, जो वस्तुतः श्रेष्ठों मे सर्व-श्रेष्ठ और उच्चों मे सर्वोच्च है। सचमुच तुम मे कोई ऐसी वस्तु है, जो सब से उच्च है और जो अपने अस्तित्व का बोध कराती है। खुशामदी व्यक्ति जब हमारी प्रशंसा और स्तुतियॉ करने लगता है, तब हम फूल उठते है, और प्रसन्न हो जाते है। क्यो ? इसका कारण यह नही है कि ये कथन सच्चे हैं ; परन्तु वेदान्त कहता है कि वास्तविक कारण हमारे वास्तविक आत्मा मे है। सब घटनाओं के पीछे कोई चीज़, कोई प्रबल शक्ति, अथवा कोई वस्तु ठोस, अक्षय, सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च ऐसी है, जो आपका वास्तविक आत्मा है और जो सब तरह की खुशामद एवम् प्रशंसाओं के योग्य है। और कोई भी ख़ुशामद, कोई भी स्तुति अथवा कोई भी उत्कर्ष ऐसा नही जो वास्तविक आत्मा के योग्य न हो सके। किन्तु इससे कोई यह नतीजा न निकाले कि राम खुशामद को नीति-संगत बतला रहा है। नहीं! वास्तविक आत्मा की खुशामद, प्रशंसा, और गौरव-गान होना चाहिए, न कि शरीर का। परिच्छिन्नात्मा को इसका अधिकारी न समझना चाहिए।

"Render unto Caesar, the things that are Caesar's and render unto God, the things that are God's.

(Bible)

"जो पदार्थ सीज़र (राजा) के है, वे सीज़र को दे दो और जो ईश्वर का वस्तुयें हैं वे ईश्वर को दो।"

ख़ुशामद मे पाप इसलिए है कि सीज़र की चीज़े ईश्वर को और ईश्वर के पदार्थ सीज़र को देने की भूल की जाती है। हमारी ख़ुशामद के दास होने की पापात्मकता इसी उलट-पुलट दशा के कारण है। इसी मे पापीपना है। नहीं, नहीं, गाडी घोड़े के आगे रक्खी जाती है। यदि

आप अपने स्वरूप का अनुभव कर सर्वश्रेष्ठता और सर्वोच्चता से अपनी एकता का बोध करें, और उसे अपनी आत्मा समझें, शरीर मे वा चित्त से ऊपर उठें, तो वास्तव मे आप श्रेष्ठो मे सर्वश्रेष्ठ है, उच्चो मे सर्वोच्च है, आपही अपने आदर्श हैं। नहीं, नहीं, अपने ईश्वर आप ही हैं। इसका अनुभव कीजिये और आप स्वतंत्र है। किन्तु आत्मा, अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप का गौरव शरीर को देने मे और शरीर के लिए उत्कर्ष तथा ख़ुशामद चाहने मे भूल की जाती है। यह क्या बात है कि इस संसार मे हर एक मनुष्य और हर एक पशु भी दर्प वा ख़ुशामद से दूषित है? यह क्या बात है कि अहंकार और अभिमान सर्वव्यापी है?

एक सज्जन ने आकर राम से कहा, "देखिये, देखिये! हमारा धर्म सर्वश्रेष्ठ है, क्योकि उसके उपासको की, उसे माननेवाले लोगो की संख्या सब से बडी है। मानव जाति का अधिकतम भाग हमारे धर्म का है, इसलिए अवश्य ही वह सब धर्मो से अच्छा है"। राम ने कहा, "भइया भा !! समझ-बूझ कर बात कहो। तुम शैतान मे विश्वास करते हो?" उसने कहा, "क्यो"? "तो कृपया बतलाइये—"शैतान के धर्म के अनुयायी अधिक हैं या आपके धर्म के? यदि बहु-संख्या पर सत्य का निर्णय होना है, तो शैतान को सब पर श्रेष्ठता प्राप्त है"।

हम कहते हैं कि अभिमान या अहंकार ने—आप इसे शैतान का एक पहलू कह सकते हैं—इस संसार के प्रत्येक प्राणी पर दृढ अधिकार जमा लिया है। यह क्या बात है? साथ ही हम यह भी जानते हैं कि शरीर किसी प्रकार के गर्व के योग्य नहीं है, शरीर को अभिमान करने का अथवा श्रेष्ठता का भाव दिखाने का कोई अधिकार नही है। हर एक जानता है कि शरीर किसी प्रकार के अहंकार या अभिमान की पात्रता या योग्यता नही रखता, परन्तु हर एक में यह वर्तमान है। ऐसा क्यो है? यह सार्वभौमिक घटना कहाँ से आई? यह सार्वभौम विरोधाभास अर्थात्

यह सार्वभौम-विरोध कहा से आया ? यह अवश्य तुम्हारे भीतर से आया होगा। कारण ढूँढने दूर नहीं जाना है। तुम्हारे भीतर श्रेष्ठों में जो सर्वश्रेष्ठ है; वह आपका वास्तविक आत्मा है। तुम्हे उसे जानना और अनुभव करना पड़ेगा, और जब तुम सच्चे स्वरूप अर्थात् वास्तविक आत्मा को जान और अनुभव कर लोगे, तब इस तुच्छ शरीर के लिए प्रशंसा पाने को तुम कभी न झुकोगे। तब फिर इस क्षुद्र शरीर के लिए अहंकार या गर्व प्राप्त करने को तुम कभी न झुकोगे। यदि तुम सच्चे आत्मा का अनुभव कर लो, यदि तुम स्वयं अपने हृदय का उद्धार कर लो, तो तुम्ही अपने उद्धारक हो जाते हो। यदि तुम अपने अन्दर ईश्वर का अनुभव करलो, तो इस तुच्छ शरीर के लिए प्रशंसाये सुनना, अपने शरीर की स्तुतिया सुनना तुम्हे अपने आपको तुच्छ और नीचे गिराने वाला कार्य समझ पड़ेगा। तब तुम शारीरिक अभिमान या स्वार्थपूर्ण अहंकार से ऊपर उठ जाओगे। शारीरिक अभिमान या स्वार्थमूलक अभिमान से ऊपर उठने का यही उपाय है।

भीतर का सच्चा आत्मा, सच्चा स्वरूप, श्रेष्ठो मे श्रेष्ठ, उच्चो मे उच्च तथा देवो मे परम देव होता हुआ अपने स्वभाव को कैसे छोड सकता है ? यह आत्मा अपने को पतित कैसे बना सकता है; अपने को दीन, भाग्यहीन, कीडा मकोडा जैसा कैसे मान सकता है ? इतनी गहरी अज्ञानता मे वह अपने को कैसे गिरा सकता है ? वह अपनी प्रकृति नही त्याग सकता ? और अहंकार या अभिमान के सार्वभौमिक होने का यही कारण है, किन्तु इस व्याख्या से अहंकार या अभिमान नीतिसंगत नहीं सिद्ध होता। शरीर के लिए अभिमान अथवा अहंकार अयुक्त है।

हम जानते हैं कि पृथ्वी चलती है, और पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य स्थिर है। सब जानते हैं कि सूर्य नही चलता और पृथ्वी चक्कर लगाती है। किन्तु हम एक भूल करते हैं, अर्थात् भ्रम मे पड जाते हैं।

पृथ्वी की गति हम सूर्य को प्रदान करते है, और सूर्य की अचलता पृथ्वी को। इसी तरह की भूल वे लोग करते है, जो अभिमान के भूखे है, जो अहंकार के अधीन है। यहा भी उसी तरह की भूल होती है। यहा आत्मा अर्थात् वास्तविक सूर्य प्रकाशो का प्रकाश है, जो अचल है, जो वास्तव मे सम्पूर्ण गौरव का मूल है; और वहा शरीर पृथ्वी के तुल्य है, जो हर घडी बदलती रहती है, किसी तरह की प्रशंसा की पात्र नही, और किसी प्रकार के गौरव के योग्य नही है; परन्तु आत्मा का गौरव शरीर को प्रदान करने मे और शरीर की निरर्थकता आत्मा को अर्थात् वास्तविक स्वरूप को प्रदान करने मे हम भूल करते है। यह भूल अर्थात् अविद्या का यह रूप इस तुच्छ शरीर के लिए उत्कर्ष चाहने का कारण है। अच्छा, यदि यह अज्ञान शैतान कहा जा सके, यदि शैतान का अनुवाद अज्ञान किया जा सके, तो हम कह सकते है कि इस रीति मे शैतान आकर चीज़ो को अस्तव्यस्त कर देता है, आत्मा का गौरव शरीर को और शरीर की असारता आत्मा को प्रदान कर देता है। इस अविद्या को दूर करो और तुम अभिमान अथवा अहंकार को नष्ट कर दोगे।

यह क्या बात है कि लोभ (greed), उत्कर्ष, या लालच सार्वभौम हैं ? पशुओ मे लोलुपता है, वह मनुष्यो मे है, नारियो मे है, प्रत्येक मे है। यह क्या बात है कि लोलुपता, लालच, या उत्कर्ष सार्वभौम हैं ? हर एक चाहता है कि उसे सब तरह की वस्तुये प्राप्त हो जाँय। हर एक अपने शरीर के इर्दगिर्द पदार्थो का संग्रह करना चाहता है, पर लोलुपता की तृप्ति कभी नही होती। जितना ही अधिक तुम प्राप्त करते हो, उतना ही अधिक लोभ की लौ भभकती है, उतना ही अधिक वह लौ पुष्टि पाती है। तुम सम्राट् बन जाते हो; परन्तु फिर भी लोभ वर्तमान है, और यह सम्राट् तुल्य महान है। तुम ग़रीब आदमी हो और

तुम्हारा लोभ भी ग़रीब है। यह सार्वभौमिक क्यों है? गिरजों में, देवालयों में, और मसजिदों में, सर्वत्र उपदेशक बड़े बड़े उपदेश देते और कहते हैं, "भाइयो! लोभ छोड़ो, लोभ छोड़ो, लोभ छोड़ो"। लोभ का गला घोटने में वे अपनी पूरी शक्ति लगा देते हैं, वे उसे हटाना और निर्मूल करना चाहते हैं; परन्तु उनके सम्पूर्ण निवारण पूर्ण उपदेश व्यर्थ जाते हैं, और वह बना ही रहता है। यह क्यों? वह रोका नहीं जा सकता, उसका गला नहीं दबाया जा सकता, वह वर्तमान रहता है। इस समस्या को समझाओ। लोभ के रोग को विनष्ट करने की इच्छा करने के पूर्व हमें उसका कारण जान लेना चाहिए। जब तक तुम रोग का कारण न बतलाओगे, तब तक उसे अच्छा करने की आशा तुमसे नहीं की जा सकती। हमें उसका कारण जान लेना चाहिए। "शैतान तुम्हारे हृदय में लोभ को रखता है", यह कहना अवैज्ञानिक, अतात्विक है। तर्कशास्त्र के सब नियमों के विरुद्ध है। इससे काम नहीं चलेगा। यदि तुम तथ्य की कोई वैज्ञानिक व्याख्या नहीं कर सकते, तो यह पौराणिक व्याख्या क्यों? यह सार्वभौम क्यों है? वेदान्त इसे यह कह कर समझाता है कि मनुष्य में सत्यता अर्थात् सत्यस्वरूप आत्मा है जो अपने आप को आप प्रतिपादन करता है। वह कुचला नहीं जा सकता। कहा जाता है कि कोई भी शक्ति नष्ट नहीं की जा सकती, कोई भी बल छिन्न-भिन्न नहीं किया जा सकता। शक्ति के उत्कर्ष (consummation of energy), पदार्थ की अनश्वरता (industructibility of matter). और बल के दृढ़ आग्रह (persistence of force) के नियम को हम सुनते हैं। ये सब बातें हमें सुनने को मिलती हैं, और यहां वेदान्त कहता है, "ऐ उपदेशको, ऐ पुजारियो, ऐ ईसाइयो, हिन्दुओ और मुसलमानो! तुम इस शक्ति को, इस बल को, जो लोभ के रूप में प्रकट होता है,

कुचल नही सकते" । तुम इसका दमन नही कर सकते ; अनादि काल से सब प्रकार के धर्म लोभ, कृपणता, लालच के विरुद्ध उपदेश देते चले आ रहे है ; परन्तु तुम्हारे वेद, बाइबिल और कुरान संसार को कुछ भी नही सुधार सके । लोभ वर्तमान है । शक्ति नष्ट नही की जा सकती ; परन्तु तुम उसका सदुपयोग कर सकते ो । वेदान्त कहता है, ' ऐ संसारी मनुष्य ! तू एक गलती करता है" । सब से महान् शब्द अर्थात् तीन अक्षरो का शब्द जीG–ओO–डीD (गॉड-ईश्वर) ले लीजिये, और उसे व्यतिक्रम से पढिये । वह क्या हो जाता है ? डीD–ओO–जीG (डाग=कुत्ता) । इसी प्रकार तुम शुद्धो में शुद्ध का अनर्थ कर रहे हो ; तुममें जो शुद्ध ईश्वर है, तुम उसे कुछ और ही समझ रहे हो ; उसे तुम उलटी तरह से पढते हो ; और इस तरह अपने को सममुच कुत्ता बनाते हो । यद्यपि वास्तव मे तुम विशुद्धो में विशुद्ध अर्थात् विशुद्ध ईश्वर हो । भूल से आत्मा का गौरव शरीर पर और शरीर की तुच्छता आत्मा मे आरोपित करने के अज्ञान के कारण अर्थात् इस भूल के कारण त~ म के शिकार बनते हो । इस भूल को निर्मूल करदो, और बस तुम अमर परमात्मा हो ; अपने मे निहित सच्चे स्वरूप का उद्धार करो ; सच्चे स्वरूप मे दृढ़ता से जमो ; और अपने को देवा का परमदेव, विशुद्ध मे विश्व का स्वामी तथा प्रभुओ का प्रभु अनुभव करो ; फिर इन बाहरी वस्तुओं को ढूँढ कर इस शरीर के इर्दगिर्द जमा करना तुम्हारे लिए असम्भव हो जायगा ।

अब हम मोह या शोक के विषय पर आते है । मोह का कारण क्या है ? इसका अर्थ यह है कि इस से ग्रसित मनुष्य अपने आसपास की वस्तुओं मे परिबर्तन नही चाहता । किसी अपने प्रिय की मृत्यु से मनुष्य चिन्ता और शोक से परिपूर्ण हो जाता है । उसके शोक और चिन्ता से क्या सूचित होता है ? इससे क्या सिद्ध होता है ?

जब हम बुद्धि से जानते हैं कि इस ससार मे प्रत्येक वस्तु परिवर्त्तन-शील है, बहाव की दशा मे है, तो क्यो हम ज्यो की त्यो दशा बनी रहने की आशा कर सकते है ? क्या हम अपने प्यारो को सदा अपने पास रखने की आशा कर सकते है ? और फिर भी हम इच्छा यही करते है कि कोई परिवर्त्तन न हो। यह क्यो ? वेदान्त कहता है, "ऐ मनुष्य ! तुममे कोई ऐसी वस्तु है जो वास्तव मे निर्विकार है, जो कल आज, और सदा एकसा है, परन्तु भूल (अज्ञान) से सच्चे स्वरूप वा आत्मा की नित्यता शरीर की अवस्थाओं को प्रदान की जाती है"। यही इसका कारण है। अज्ञान को दूर करो और सासारिक अनुरागो से तुम ऊपर उठ जाओगे।

आलस्य या प्रमाद का कारण क्या है ? वेदान्त के अनुसार प्रमाद या आलस्य की सर्वव्यापकता या सार्वभौमिकता का कारण यह है कि प्रत्येक और सकल प्राणियो के अन्तर्गत सच्चा आत्मा पूर्ण विश्राम तथा शान्ति है, और अनन्त होने के कारण सच्चा आत्मा चल नही सकता। अनन्त चल नहीं सकता। केवल परिच्छिन्न वा सान्त ही में गति हो सकती है। यहाँ एक वृत्त है और वहाँ दूसरा वृत्त है। जहाँ यह है, वहाँ वह नही है और जहाँ वह है, वहाँ यह नही है। यदि एक दूसरे के अस्तित्व को सीमाबद्ध करते है, तो दोनो सान्त वा परिच्छिन्न है। यदि हम एक वृत्त को अनन्त बनाना चाहते है, तो वह समग्र स्थान को घेर लेगा। छोटे वृत्त के लिए स्थान न रह जायगा। जब तक छोटा वृत्त उस (बड़े वृत्त) को परिमित किये हुए था, तब तक आप उसे अनन्त नही कह सक थे। पहले को असीम बनने के लिए एक अकेला होना पड़ेगा, उससे बाहर कुछ न होना चाहिए। और जब उसमे बाहर कोई भी दूसरी चीज़ नहीं है, तौ फिर ऐसी कोई चीज़ नही रह गई जो अनन्तता से परिपूर्ण नहीं है। और इस तरह स्थान के अभाव के

एक मनुष्य दो रोगो से पीडित था। उसे एक नेत्र-व्याधि और एक उदर-रोग था। वैद्य के पास जाकर उसने उससे चिकित्सा करने को कहा। वैद्य ने इस रोगी को दो प्रकार की औषधिया अर्थात् दो तरह के चूर्ण सेवन करने के लिए दिये। एक पौडर (सुरमा) नेत्रो मे लगाये जाने के लिए दिया था। इस मे सुरमा अर्थात् गंधकी सुरमा (lead·sulphide) था, जो यदि पेट मे चला जाय तो विष रूप था। यह आखो मे लगाया जा सकता था, और भारत में लोग इसे नेत्रो मे लगाते हैं। इस लिए वैद्य ने उसे नेत्रो के लिए सुरमा दिया। दूसरा पौडर (चूर्ण) वैद्य ने खाने के लिए दिया था। इस चूर्ण में काली और लाल मिर्चे थी। लाल मिर्च को अंग्रेजी मे चिल्ली (chilly) कहते हैं, जिसका अर्थ उस भाषा मे शीतल (cold) होता है, पर जो वास्तव मे तीक्ष्ण बडी होती है। अर्थात् एक चूर्ण वैद्य ने उसे खाने के लिए दिया, जिसमे मिर्चे थी। यह मनुष्य घबराहट की दशा मे था, इस लिए इसने दोनो चूर्णो को आपस मे बदल लिया। खानेवाला चूर्ण तो उसने आँखो मे लगा लिया, और सुरमा तथा दूसरी चीजे, जो विष थी, उसने खा ली। अब तो आँखे फूट गई, और पेट पहले से भी बिगड गया।

लोग यही कर रहे हैं, और इस संसार में समस्त कथित पापो का यही कारण है। एक ओर तो आत्मा, अर्थात् प्रकाशो का प्रकाश तुम्हारे भीतर है ; और दूसरी ओर यह शरीर है, जिसे पेट कह लीजिये। शरीर के लिए जो कुछ होना चाहिए, वह आत्मा के निमित्त किया जा रहा है और आत्मा की प्रतिष्ठा, मान तथा गौरव शरीर को दिया जा रहा है। हर एक चीज़ मिल जुल गई है, हर एक चीज़ गडबड हालत में कर दी गई है। इसके कारण संसार मे यह घटना हो रही है जिसे पाप कहते हैं। चीजो को ठीक कर लो, तुम भी ठीक हो जाओगे, तुम्हारा

सासारिक अभ्युदय होगा, और परमार्थ दृष्टि से आप देवो के देव हो जाओगे।

इसी प्रकार हर एक वस्तु आप में है, किन्तु कुठौर रक्खे जाने से नीचे ऊपर पड गई है। ईश्वर को नीचे डाल दिया है और शरीर को उसके ऊपर उठा दिया है, अर्थात् सर्वोच्च स्वर्ग को घोर नरक में बदल डाला है। उन्हे ठीक क्रम से रख दो, फिर तुम देखोगे कि यह पापो की भयंकर और घृणित घटना भी आपकी अच्छाई और विशुद्धता बखानेगी। अपनी दृष्टि ठीक करो और आप अभी परमेश्वर हो।

एक मनुष्य ने, जो नास्तिक था, अपने घर की दीवारो पर सब कही लिख रक्खा था (God is nowhere) "ईश्वर कही नहीं है"। वह अनीश्वरवादी था। वह वकील था। एक बार एक मुवक्किल ने उसे ५००) देने चाहे। उसने कहा, "नही, मै १०००) लूँगा"। मुवक्किल ने कहा—बहुत अच्छा, यदि मुक़दमा जितादो तो मै १०००) दूँगा; परन्तु बाद को दूँगा। अभी यदि ५००) लेना मंजूर हो तो पहले ले लीजिये"। वकील साहब को सफलता का दृढ निश्चय था और उसने (वैसे ही) मुक़दमा ले लिया। वह न्यायालय मे गया। उसे पूरा निश्चय था कि मैने सब कुछ ठीक किया है। उसने सावधानी से मुक़दमे का अध्ययन किया था। किन्तु मुक़दमा पेश होने पर प्रतिपक्षी के वकील ने एक ऐसी पुष्ट बात निकाल कर कह दी कि वह मुक़दमा हार गया, अब मेहनताने के १०००) भी जाते रहे, जिसके पाने की उसे पूरी आशा थी। वह बहुत ही दुखी, हताश और उदाश दशा में अपने घर लौटा। निराश अवस्था में जब वह अपनी मेज़ के ऊपर झुका हुआ था, तब उसका प्यारा बच्चा आया। बच्चा शब्दो के हिज्जे करना सीख रहा था। वह हिज्जे करने लगा, "जी-ओ-डी=

गॉड, आई-एस=इज़ (God is—*इसके आगे का शब्द बडा था, उसमे अनेक अक्षर थे। बेचारा बच्चा इस शब्द के हिज्जे न कर सका। उसने इस शब्द को दो टुकडो मे तोड डाला, एन० ओ० डब्लयू=नाऊ और एच० ई० आर० ई=हीयर (now here) और बच्चा प्रसन्नता से उछल पडा। सम्पूर्ण वाक्य के हिज्जे कर डालने की अपनी सफलता पर वह चकित हो उठा। "ईश्वर अब यहा है" (God is now here), "ईश्वर यहाँ है"। वही वाक्य (God is no where) ईश्वर कही नहीं है" (God is now here) "ईश्वर अब यहा है" पढ़ा गया। यही सारा मामला है।

वेदान्त चाहता है कि आप चीज़ो के ठीक हिज्जे (यानी विन्यास) करे। उनका अशुद्ध पाठ न करे, उनके ग़लत हिज्जे न कीजिये। इस वाक्य "गॉड इज़ नोव्हेयर=God is no where" (ईश्वर कही नही है), अर्थात् पाप और अपराध की घटना को "गाड इज़ नाउ हीयर=God is now here" (ईश्वर अब यहाँ है) करके पढ़िये।

तुम्हारे पापो मे भी तुम्हारा ईश्वरत्व, अर्थात् तुम्हारी प्रकृति का ईश्वरत्व प्रमाणित होता है। इसका अनुभव करो, और समग्र संसार तुम्हारे लिए स्वगरूप मे खिल उठेगा, अर्थात् वह स्वर्ग या नन्दन-कानन मे बदल जायगा।

---

*"no where नो व्हेयर" बच्चे ने छोड दिया।

गाड इज़ नोव्हेयर (God is no where) का अर्थ हुआ "ईश्वर कही नहीं है" और "नोव्हेयर" को दो टुकड़े कर डालने पर दो शब्द बन गये "नाऊ" और "हीयर" और पूरा वाक्य हुआ "गाड इज़ नाऊ हीयर" अर्थात् "ईश्वर अभी यहा है"।

एक बार परीक्षा मे विद्यार्थियो से "ईसा के पानी को मद्य मे बदल देने के चमत्कार" पर निबन्ध लिखने को कहा गया था। कमरा छात्रो से भरा हुआ था, और सब लिख रहे थे। बेचारा एक विद्यार्थी (बाइरन=Byron) सीटी बजा रहा था, गा रहा था, तथा कभी इस कोने की ओर और कभी उस कोने की ओर देख रहा था। उसने एक भी शब्दाश (syllable) नहीं लिखा था। वह परीक्षाभवन मे भी खेल ही करता रहा, बैठा मौज करता रहा। ओह, उसका चित्त स्वाधीन था। समय बीतने पर जब प्रबन्धक उत्तर-पत्र जमा कर रहा था, तो उसने बाइरन से हँसी मे कहा, "मुझे बडा खेद है कि इतना बडा निबन्ध लिखते लिखते तुम थक गये"। लो, बाइरन ने अपना कलम उठाया और उत्तर-पत्र पर एक वाक्य लिख कर उत्तर-पत्र प्रबन्धक को दे दिया। जब परीक्षा का नतीजा निकला, तो उसे प्रथम पुरस्कार मिला; उसी बाइरन को प्रथम पुरस्कार मिला। जिस परीक्षार्थी ने कुछ भी नहीं लिखा था, जिसने कलम उठा कर केवल एक वाक्य एक दफ़े मे घसीट दिया था, उसे प्रथम पुरस्कार मिला। परीक्षा का प्रबन्धक, जिसने बाइरन को खिलाडी समझ रखा था, बडा विस्मित हुआ, और अन्य परीक्षार्थियो ने परीक्षक महोदय से सम्पूर्ण श्रेणी के सामने अर्थात् विद्यार्थियों के पूरे समूह के सामने बाइरन का निबन्ध, जिसने उसे पुरस्कार दिलाया था, पढ़ने की प्रार्थना की। निबन्ध यो था:—"The water saw her master and blushed" "जल ने अपने स्वामी को देखा और लज्जा-वश से लाल हो गया"। यह निबन्ध ईसा के चमत्कार पर था, जिसमे ईसा ने जल को मद्य मे बदल दिया था। सम्पूर्ण लेख इतना ही था। क्या यह आश्चर्यमय नही है? लज्जा और प्रफुल्लता मे चेहरा लाल हो जाता है, जल लाल हो मद्य हो गया। जब कोई कामिनी अपने स्वामी, अथवा अपने प्रेमी की बातचीत सुनती है, तो

वह विकसित होती है, जल ने भी अपना स्वामी देखा और वह खिल गया। बस, इतना ही है। वाह, वाह ! क्या खूब ! क्या खूब कहा !

अपने अन्तर्गत सच्चे आत्मा का अनुभव करो। ईसामसीह की तरह अनुभव करो कि "पिता और पुत्र एक हैं' (that the father & son are one) "प्रारम्भ में शब्द था; शब्द ईश्वर के साथ था" (In the beginning was the word; the word was with God.)। इसे अनुभव करो, इसे ठीक अनुभव करो। "स्वर्गों का स्वर्ग तुम्हारे भीतर है" (the heaven of heavens is within you)। यह अनुभव करो ; फिर जहा कही तुम जाओगे गंदले से गँदला जल तुम्हारे लिए चमचमाते मद्य में खिल उठेगा, हर एक कारागार तुम्हारे लिए स्वर्गों के स्वर्ग मे बदल जायगा। तुम्हारे लिए कोई भी कष्ट या कठिनता न होगी, तुम सबके स्वामी हो जाओगे।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

What is wanting ?
Summer redundant
Blue abundant
......where is the blot ?
......the world, yet a blank all the same,
......frame work which waits for a picture to frame ;

What of the leafage
What of the flower ?
Roses embowering with naught they embower !
Come then, complete incompletion, oh come;
Come through the blueness, perfect the summer
Breathe but one breath
Rose beauty above
And all that was death
Grows life, grows love.
Om Om Om.

(नोट)—यह कविता कुछ अधूरी सी प्राप्त हुई है, जिससे कहीं कहीं पर भाव अस्पष्ट है, अतएव अनुवाद नहीं किया गया। किसी प्रेमी पाठक से पूर्ण कविता यदि प्राप्त हो गई, तो अनुवाद प्रकाशित कर दिया जायगा।

स्वामी रामतीर्थ के समग्र ग्रन्थ

लेख व उपदेश

हिन्दी में—साधारण संस्करण	मूल्य
१—भाग १ अन्तरात्मा	१॥)
२—भाग २ शक्तिस्रोत	१॥)
३—भाग ३ आत्मानुभव	२॥)
४—भाग ४ विश्वानुभूति	१॥)
५—भाग ५ धर्मतत्त्व	२)
६—भाग ६ वेदान्त-शिखर से	१॥)
७—भाग ७ भारत-माता	२)
८—भाग ८ अरण्य संवाद	२)
६—भाग ६ सुहल कि जंग गंगा-तरंग	१॥)
१०—राम-हृदय	१॥)
११—राम-पत्र	१॥)
१२—राम-वर्षा भाम १ (भजनावली)	३)
१३—राम-वर्षा भाग २ ,,	२)
१४—राम जीवन-कथा	५)
१५—कर्मयोग रहस्य—	प्रेस मे
१६—भक्तियोग रहस्य—	,,
१७—व्यावहारिक वेदान्त—	,,
१८—सुदामा के तंडुल	२)

नोट—राम-हृदय और रामपत्र पुस्तको का मूल्य कपड़े की सुन्दर जिल्द में ॥) अधिक है।

स्वामी राम के चित्र

१—केबीनेट फोटो	२)
२—तिरंगा फोटो प्रिंट	।)
३—स्वामी नारायण का केबीनेट फोटो	२)